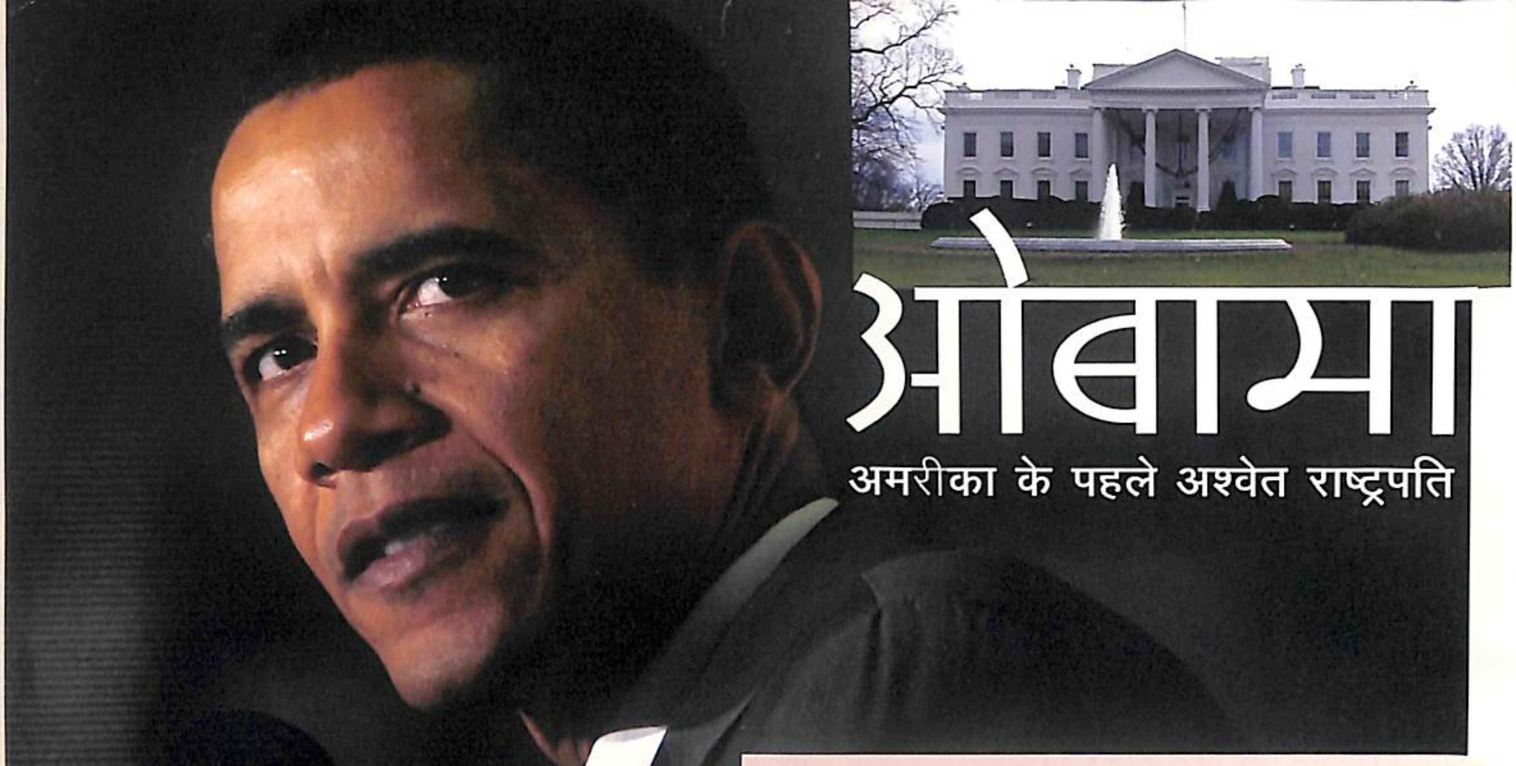
बाल विज्ञान पत्रिका

दिसम्बर 2008 • 15 रुपए

चकमक





ओबामा

अमरीका के पहले अश्वेत राष्ट्रपति

"मेरा एक सपना है। और यह सपना अमरीकी सपने से बहुत गहरे से जुड़ा है। मेरा सपना है कि एक दिन यह देश खड़ा होगा और अपने इस वादे को पूरा करेगा जो इसने सालों पहले खुद से किया था। एक वादा कि 'सभी इंसान बराबर हैं'। मेरा सपना है कि एक दिन जॉर्जिया की लाल पहाड़ियों पर अश्वेत गुलाम मज़दूरों के बेटे और उनके मालिकों के बेटे एक साथ बराबरी और भाईचारे के साथ बैठेंगे। मेरा सपना है कि एक दिन मिसीसिपी जैसा राज्य, जहाँ आज गैर-बराबरी और अत्याचार का बोलबाला है, न्याय और आज़ादी के समन्दर में बदल जाएगा। मेरा सपना है कि मेरे चार छोटे बच्चे एक ऐसे मुल्क में जिएँगे जहाँ उन्हें उनकी चमड़ी के रंग से नहीं, उनके चरित्र के गुणों से पहचाना जाएगा।

आज मैंने एक सपना देखा है!"

– मार्टिन लूथर किंग (जूनियर)

मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) ने यह भाषण अमरीका की राजधानी वॉशिंगटन डी.सी. के लिंकन मेमोरियल पर 27 अगस्त 1963 को दिया था। मार्टिन लूथर किंग को गांधी के सच्चे अनुयायी और अमरीका में अश्वेत लोगों के लिए संघर्ष करने वाले योद्धा के तौर पर पूरे विश्व में मान दिया जाता है।

रैक्स डी रोज़ारियो

भारत और अमरीका कई तरह से एक-जैसे हैं। दोनों देशों में लोकतंत्र है। अमरीका दुनिया का सबसे दमदार लोकतांत्रिक देश है और भारत सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। दोनों ही देशों में जनता अपने नेता का चुनाव करती है जो शासन चलाता है। दोनों ही देशों में बड़ी संख्या में कई सारे अल्पसंख्यक समुदाय हैं जिनके प्रति सालों तक भेदभाव बरता जाता रहा है। अक्सर उन्हें अपने ही देश में दूसरे दर्जे के नागरिक के रूप में रहना पड़ता था। दोनों ही जगह इन भेदभावों को कम करने के लिए कई कदम उठाए गए हैं। इन भेदभावों के कारण ये समुदाय आज तक हाशिए में ही रहते आए हैं।

148 साल पहले अब्राहिम लिंकन संयुक्त राष्ट्र अमरीका के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए थे। उन्होंने घोषणा की थी कि वे इस देश से गुलामप्रथा को खत्म कर देंगे। कई सारे दक्षिणी राज्यों ने इस घोषणा के कारण खुद को संघ से अलग कर दिया। वो इसलिए क्योंकि इनकी अर्थव्यवस्था कपास के खेतों में काम करने वाले गुलामों पर निर्भर करती थी। अधिकांश गुलाम अफ्रीका से पकड़कर लाए गए थे। वैसे ही जैसे ब्रिटेश सरकार भारत से बिहारियों और तमिल लोगों को मॉरिशस, फीजी और दक्षिण अफ्रीका की चीनी मिलों और श्रीलंका के चाय बागानों में काम करने के लिए ले जाती थी। इन गुलामों के पास कोई अधिकार नहीं होते थे। उनकी ज़िन्दगी बड़ी दयनीय होती थी ।

अगले साल अमरीका में गृहयुद्ध छिड़ गया जो पाँच सालों तक चला। दक्षिणी राज्यों के राज्य मण्डल की हार हुई और गुलाम-प्रथा का देश से खात्मा हो गया।

बावजूद इसके दक्षिणी राज्यों ने अफ्रीकी-अमरीकियों से भेदभाव बरतना जारी रखा। उन्होंने ऐसे कानून बनाए जिन्होंने शिक्षा, नौकरियों, स्वास्थ्य सेवाओं आदि को इन समुदाय के

शेष भाग पृष्ठ 39 पर

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका • 267 • दिसम्बर 2008

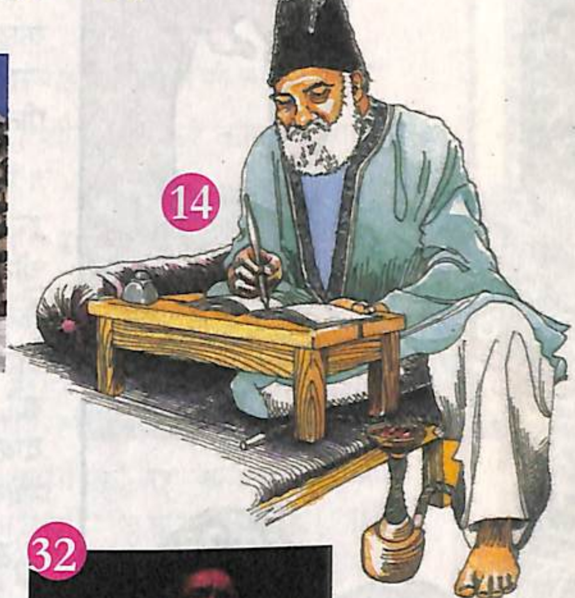




इस अंक में



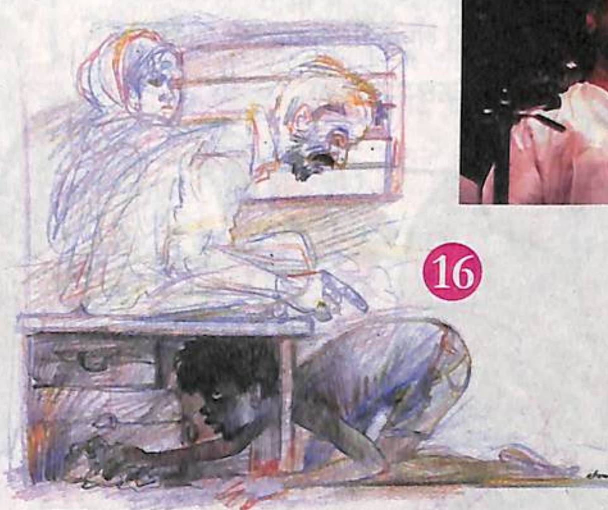














आवरणः अतनु राय

एस.आई.जी/आई.सी.आई.सी.आई. बैंक के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित।

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी

सम्पादकीय सलाहकार
रेक्स डी रोज़ारियो
तेजी ग्रोवर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

डिज़ाइन
अतनु राय
डिजिटल एक्सप्रेशन्स

वितरण
अनिल लोखण्डे

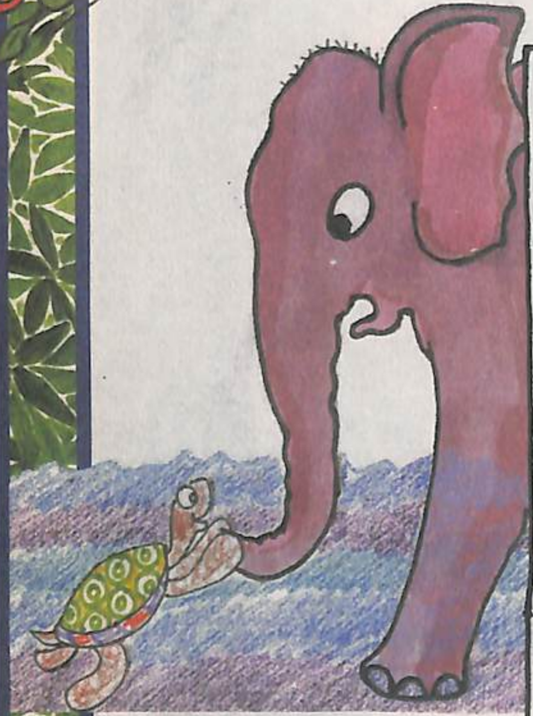
सहयोग
मिहिर
प्रीति चौहान
कमलेश यादव

सदस्यता शुल्क
एक प्रति - 15.00
वार्षिक - 150.00
दो साल - 275.00
तीन साल - 400.00
आजीवन - 3000.00

सभी डाक खर्च हम देंगे। चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं। भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर
भोपाल, म.प्र. 46 2016
फोनः (0755) 2671017, 2550976, 6549033
फैक्सः (0755) 2551108
chakmak@eklavya.in
circulation@eklavya.in
www.eklavya.in

बड़ा हाथी, नन्हा कछुआ





एक कछुआ था। छोटा-सा। नटखट-सा। कोई भी जानवर पानी में उतरता तो वह खूब शरारत करता। उन्हें गुदगुदी करता। हाथी को तो वह ज़्यादा ही चिढ़ाता।

एक दिन जब हाथी नहाने के लिए पानी में घुसा तो कछुआ तैरता हुआ आया और उसकी पीठ पर बैठ गया। हाथी नहाकर पानी के बाहर आ गया। उसकी पीठ पर बैठा कछुआ भी। हाथी उसे बैठाकर चल पड़ा।

रास्ते में एक तितली मिली। वह बोली, "हाथी दादा, इस शरारती कछुए को कहाँ लिए जा रहे हो?" हाथी चौंका। उसने पूछा, "कैसा कछुआ? कहाँ है कछुआ?" तितली बोली, "तुम्हारी पीठ पर कैसा अकड़कर बैठा है।" हाथी ने गुस्से में आकर कछुए को अपनी सूँड में पकड़ लिया। कछुए ने कहा, "हाथी दादा, मैं तो भूल से तम्हारी पीठ पर चढ़ गया था। सोचा कोई ऊँची चट्टान है।"

हाथी बोला, "तू बड़ा पाजी है। जब भी पानी पीने जाता हूँ, मुझसे शरारत करता है। चल, मैं तुझे अपनी पीठ से भी ऊँची जगह पर बिठाता हूँ।"

कछुए ने पूछा, "कहाँ?"







"उस बरगद के पेड़ पर। उसकी सबसे ऊँची डाल पर। तुम्हारी यही सज़ा है।"

कछुआ बहुत घबराया। पर उसने हिम्मत नहीं हारी। उसने कहा, "मैं बरगद की डाल पर बैठने से नहीं डरता। मैं ख़ूब झूला झूलूँगा। कोयल से गाना सुनूँगा। कबूतर से कहानी, कौए से ख़ूब बातें करूँगा। उसकी ऊँची डाल पर मुझे बड़ा मज़ा आएगा।"

हाथी ने पूछा, "तू बड़े से बड़े पेड़ पर बैठने से नहीं डरता?"

"बिलकुल नहीं," कछुए ने सीना तानकर कहा, "मगर एक आम के पेड़ से ज़रूर डरता हूँ।"

"बताओ, बताओ, बताओ।" हाथी ने उतावली से पूछा।

"उस नदी किनारे वाले आम के पेड़ से, जिसकी लम्बी टेढ़ी डाल नदी में झुकी हुई है। ओह! वह डाल कितनी मोटी है। देखकर ही डर लगता है। लगता है बैठते ही गिर पड़ूँगा। बस उस पेड़ पर मुझे मत बिठाना।" कछुआ बोला।

हाथी ज़ोर से हँस पड़ा। अपने बड़े-बड़े कान हिलाता बोला, "अब मैं तुझे उसी पर बिठाऊँगा।" कछुआ चुप रहा। हाथी ने जैसे ही पानी में झुकी हुई आम की डाल पर कछुए को बिठाया, वह पानी में कूद गया।

फिर कछुए ने पानी से अपनी गर्दन निकालकर हँसते हुए कहा, "हाथी दादा, धन्यवाद!"

यह कहकर उसने झट से अपनी गर्दन पानी में छिपा ली।

–अमर गोस्वामी



चित्र: कनक

डॉ. किशोर पँवार

एक सुबह परगुलेरिया के नाम



23 सितम्बर 2008 की एक खूबसूरत सुबह। समय यही कोई आठ बजे। घर से निकलते ही तय कर लिया था कि आज सबसे पहले दुबे जी के घर की बागड़ पर लगी परगुलेरिया की बेल के फूलों की तस्वीरें लेना है। तय इसलिए कर रखा था क्योंकि पिछली बार चूक हो गई थी। इसके सुन्दर झुमकेदार फूलों पर मेरी नज़र पहले से ही थी। परन्तु किसी कारणवश फोटो न ले पाया और पौधा सूख गया।

परगुलेरिया एक सामान्य बरसाती वार्षिक बेल है जिसे बोलचाल में उतरन और जुटक भी कहते हैं। यह सड़कों के किनारे व गाँवों में काँटों की बागड़ या तार की जालियों पर चढ़ी रहती है। सर्दी बढ़ते ही यह सूखने लगती है। लेकिन तब तक इसका वंश चलाने के लिए बहुत सारे फल इस पर लग चुके होते हैं। इनमें अकाव की तरह रुईदार बीज भरे होते हैं। बरसात में अंकुरित होकर ये एक नई शुरुआत करते हैं। इस पर गहरे हरे रंग की बड़ी-बड़ी हृदयाकार पत्तियाँ जोड़े में लगी होती हैं। पूरी बेल रोएँदार होती है जिसे तोड़ो तो अकाव की तरह दूध टपकने लगता है। पत्तियाँ पाँच से दस सें. मी. लम्बी होती हैं। झुमके जैसे फूल पूरी बेल पर यहाँ-वहाँ लटके रहते हैं। यह एक औषधीय पौधा है जिसे कफ, दमा, मियादी बुखार आदि के उपचार में काम लिया जाता है। परन्तु मेरी नज़र तो इसके दूधिया रंग के सुन्दर नक्काशीदार फूलों पर थी। अकाव जैसे इसके फूलों पर पंखुड़ियों के अलावा सुन्दर नक्काशीदार मुकुट (करोना) भी होता है। फूलों की सुन्दरता बढ़ाने के साथ-साथ यह खास रचना कीट-पतंगों को पराग भी मुहैया कराती है। यह कुछ ही फूलों में पाई जाती है। जब मैं फूलों की फोटो खींचने के लिए आगे बढ़ा तो क्या देखता हूँ कि फूल पर एक काले-मटमैले रंग का पतंगा भी बैठा है। यानी फूल का परागणकर्ता भी वहीं है। सोचा, यह एक बढ़िया तस्वीर होगी। परन्तु तभी ख्याल आया कि यह पतंगा सुबह-सुबह यहाँ क्या कर रहा है? पतंगे तो रात ही में ही सक्रिय होते हैं। इससे पहले शाम के धुँधलके में फूलों के हरे-सफेद झूमरों पर कई बार पतंगों की बारात देख चुका था। शाम ढलते ही खिलने वाले ये फूल रोशन झाड़-फानूस से कम आकर्षक नहीं होते। फिर इन पर पतंगे कैसे न आएँ!

अनोखा खेल

फूल को फोकस में लेते ही पतंगा थोड़ा फड़फड़ाया। गौर से देखा तो पता चला





चित्र: अतनु रॉय

सुखदेव मल्होत्रा

मजिस्ट्रेट पे जुरमाना

हौसा और जौसा माँ जाए भाई थे। वो दोनूँ ढाणी बसेसर में रहया करें थे। उन दिनाँ म्हारे देस में इंगरेजाँ का राज था। उन्हाँने लड़ाई खातिर घणे-सारे फौजी चाहिए थे। इस लिए वे लोग म्हारे देस ते आपणी फौज की भर्ती करण लाग रे थे।

एक दिन, हौसा-जौसा ने सुणया कि भर्ती का एक बड़ा मेला लागन आला था। और वो बी उनके आपणे गाम में।

उसे साँझ ने हौसा ने जौसा ते कह्या, "भाई, यो सुसरे इंगरेज सैं घणे ई चालबाज। मरे बटे म्हारा-ए खावें अर फेर हमने आँख भी दखावें सैं। मैं न्यू बूझूँ, यो सुसरी भर्ती किसे तरहाँ रुक न सकती?"

जौसा ने एक लाम्बी साँस भरी, पर बोल्या कुछ भी नहीं।

असे रात की-ए बात सै। सबे लोग आराम ते सो रे थे। जौसा चुपके-सी अपणी खाट ते नीचे उतरया अर चाल पड़या नदी की ओर। उसने एक कस्सी अपणे काँधे पे धर ली थी।

उड़े जा के उसने नदी का किनारा थोड़ा तोड़ गेरया। नदी का पाणी पास के मैदान में भरण लाग्या। सबेर होण तक सारा मैदान पाणी में डूब लिया था। भर्ती-मेला उसे मैदान में लागणा था। सो लाग न सक्या।

कई दिनाँ बाद गाम में पुलस आई अर धर ले गई जौसा ने। उसे मजश्टरेट के सामणे जा पेस कर्‌या। वो कोए इंगरेज-ए था। मजश्टरेट ने जौसा को देख्या अर बोल्या, "टुमने नदी का किनारा तोरा हे। भरटी नहीं होने डी। हम टुम पर बीश रुपया जुरमाना करटा हूँ।"

यो सुणते ई जौसा बोल्या, "थारे कहण ते ई हो जात है के जुरमाणा?"

"क्या बकटे हो?" मजश्टरेट ने लाल-पीला हो के कह्या था।

"तेरे कहण ते ई हो जात है के जुरमाना?" जौसा ने आपणी बात दोहराई।

तद मजश्टरेट ने गरज के कहया, "हाँ, हो जाता है।"

योह सुणते ई जौसा ने तपाक से कहया, "तो ले, मैं तेरे पे पचाश रु. जुरमाना बोलता हूँ। मेरे कहण ते हो ग्या के?"

योह सुणते ही मजश्टरेट को तो जाणु मिरज-सी लाग गी। तिलमिला के कहण लाग्या, "इश पागल को क्यों पकड़ लाया टुम? इशे फौरन छोड़ दो। पागल को क्या शजा देणा माँगटा?"



कि यहाँ तो प्रकृति का एक दूसरा ही खेल चल रहा है। फूल पर छुपे एक शिकारी ने अपनी टाँगों से इस पतंगे को जकड़ रखा है। क्या गज़ब संयोग है! सफेद (क्रीम) फूल पर सफेद (क्रीम) मकड़ी छुपी बैठी है। छद्मावरण का एक बेहतरीन उदाहरण।

बड़ा अजब खेल है प्रकृति का! इसमें उत्पादक फूल है। शाकाहारी उपभोक्ता पतंगा है जो मकरन्द एवं परागकणों से अपना पोषण पाने फूल के पास आया है। परन्तु उसे क्या पता था कि वह खुद किसी माँसाहारी उपभोक्ता यानी मकड़ी का भोजन बन जाएगा। कुदरत का यह ताना-बाना जिसे खाद्य श्रृंखला (फूडचेन) कहते हैं, में पलक झपकते ही शिकारी खुद शिकार बन जाता है। पतंगे-तितलियाँ फूलों के पराग को चुराने आएँगे ही यह बात फूलों पर बैठी मकड़ी को पता है। यह भी वह जानती है कि शिकार की नज़र से बचना भी है तभी तो वह फूल जैसी ही है। वहाँ बैठी है घात लगाए। पतंगा पराग लेने आया और बन गया मकड़ी का शिकार।

अनोखा शिकारी

फूलों पर बैठी यह मकड़ी कुछ अलग है। शिकार को फाँसने के लिए यह दूसरी

शेष भाग पृष्ठ 27 पर

सभी फोटो: किशोर पँवार

साढ़े पाँच के अलार्म से रोज़ की तरह आज भी मेरी नींद टूटी। रोज़ की तरह खुद को बिस्तर से खींच कर रोज़मर्रा के कामों में लग गई। दस-साढ़े दस तक सब काम निपट गए। नहा-धो लिया, कपड़े धुल गए। घर के पिछवाड़े उन्हें फैलाने गई। वहाँ मैंने टमाटर, बैंगन, मेथी, पालक और चुकन्दर लगाए हुए हैं। हमारे यहाँ नील गायों, खरगोशों और मोरों का बड़ा आतंक रहता है। सो, इन क्यारियों पर मैंने एक जाला फेंका हुआ है।

घर की सब्ज़ी-भाजी का हालचाल जानने के लिए ज्यों ही मैं और पास गई तो हैरान रह गई। मेरा दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। हे भगवान, यह तो अजगर है। जाल में फँसा, ज़िन्दा, मगर चोटिल अजगर। पिछले पाँच सालों से इस इलाके में साँपों की डरावनी गाथाएँ सुन रही थी। और आज ठीक मेरे घर के पिछवाड़े ...। आँखों पर यकीन नहीं हुआ। मैंने जल्दी-जल्दी रस्सी पर कपड़े फेंके। और उचक कर देखा। अजगर जाल में बुरी तरह गुत्थम-गुत्था था।

क्यारी के दूसरी ओर देखा तो फिर चौंक गई। वहाँ एक गोह पड़ी थी – अधमरी सी। एक तरफ अजगर था और एक तरफ गोह! बचपन में सुनी शिवाजी और तानाजी की कहानियाँ एकदम से आँखों के सामने कौंध गईं। माँ सुनाती थीं कि कैसे तानाजी ने महल में घुसने के लिए गोह का इस्तेमाल किया था। रस्सी से बँधी गोह पहाड़ी पर बने महल की दीवार से चिपक गई। और उसी रस्सी को पकड़कर मराठा सैनिक पहाड़ी चढ़ गए। और आज एक गोह यहाँ जाल में फँसी हुई है। बेबस-सी। अजगर और इस बड़ी-सी छिपकली के घायल होने का कारण समझ में आने लगा। शायद दोनों की लड़ाई हुई हो और लड़ते-लड़ते वे जाल में आ फँसे हों। गोह तो शान्त पड़ी थी पर अजगर अब भी खुद को छुड़ाने की कोशिश में था। और इस चक्कर में जनाब और-और फँसे जा रहे थे।

खैर, सवाल यह कि अब मैं क्या करूँ? कैम्पस में खबर करती हूँ तो अभी तीन-चार गार्ड लाठियाँ ले कर अवतरित हो जाएँगे और पहले से अधमरे साँप का खात्मा कर डालेंगे। यूँ ही पड़ा



फोटोः कल्याणी मदान

कल्याणी मदान

हे भगवान, यह तो अजगर है!



मैंने अपने माली – विनोद, राहुल और पड़ोसन मनाली को आवाज़ दी। घर के कामों में मदद करने वाली शीला जी और गीता भी इस मुहिम में आ जुड़ीं। सभी की राय थी कि बिना देर किए गार्ड को बुलाकर अजगर को मार दिया जाए। शीला जी तो यह भी कहने लगीं कि, "दीदी हट जाइए, नाग एक फुँफकार मारकर आपको अन्दर खींच लेगा।" मैंने उसे आँखें तरेर कर देखा। 70 किलो की मैं और नाग मुझे खींच लेगा! पर अभी तो बहुत कुछ कहा-सुना जाना था। "यदि गोह किसी को काट ले और वहीं पेशाब कर दे तो आदमी बच नहीं सकता। यदि आदमी भी तुरन्त पेशाब कर दे तो सारा ज़हर निकल जाता है।" समझ नहीं आया की हँसूँ या गुस्साऊँ। सबका पूरा ज़ोर साँप को तुरन्त मार डालने पर था। माहौल में एक अजब-सा डर और रोमाँच था। काश, मेरा बेटा कबीर भी आँगन में इतने बड़े अजगर को देख पाता। राहुल और मैंने झट से कैमरा निकालकर फोटो खींचे। पर सवाल तो वहीं का वहीं था – मार दिया जाए कि छोड़ दिया जाए?



तभी बिना आपस में बात किए मैंने और मनाली ने तय कर लिया कि साँप को बचाना है। और सारी सोच उसे बचाने के आसपास घूमने लगी। अजगर (हालाँकि वो बच्चा था) कोई 4-5 फीट लम्बा और मोटा-ताज़ा था। मैंने एक डण्डे से उसका सिर दबाया जिससे उसके खतरनाक लगने वाले फन के आक्रमण और फुँफकारें कम हो जाएँ। जबकि मनाली और विनोद ने कैंची से जाल काटना शुरू कर दिया। चोट वगैरह के बावजूद अजगर को काबू में रखना मुश्किल था। वो पूरे दम-खम के साथ हमें झटके दे रहा था। पूरे ऑपरेशन में कोई आधा घण्टा लगा। बिना ज़रा भी वक्त गँवाए वो पास की झाड़ियों में गायब हो गया। उस सुन्दर जीव को बचा पाने की खुशी में हमने बड़ी गर्म जोशी से हाथ मिलाए।

अब गोह की बारी थी। उसे आज़ाद करने का काम हमने विनोद को सौंपा। शुरू-शुरू में उसके मन में कुछ डर था। पर फिर उसे भी मुक्त कर दिया। तो इस तरह हम दोनों को बचा पाए। इस घटना को हुए कई हफ्ते हो चुके हैं। अजगर न जाने कहाँ लम्बी सर्दियों की तैयारी कर रहा होगा। गोह भी अब जाने कहाँ होगी!



पता नहीं कैसे...

मैं तभी से लगातार सोच रही हूँ। साँप को देखते ही उसे मारने वालों के बारे में। नागपंचमी के दिन साँप को दूध पिलाने, उसकी पूजा करने वालों के बारे में। उसे भोले शंकर का प्रिय मानने वालों के बारे में। मैं सोच रही हूँ कि कैसे हम साँप की पूजा और फिर उसी को मारने की बातें एक साथ कर पाते हैं? कैसे गाय को माता मानने वाले और उसके पीछे मर-मिटने की बातें करने वाले लोग कचरे के ढेर में मुँह मारती गाय को देख पाते हैं? आती-जाती गायों पर धौल जमाते जाते हैं? कुदरत की बनाई हर चीज़ में ईश्वर देखने वाले लोग कैसे पेड़ गिराते हैं, किस क्रूरता से पशुओं को मारते हैं, नदियों को प्रदूषित करते हैं, पहाड़ों को काटकर मैदान बना देते हैं – पता नहीं कैसे...

चित्रः दिलीप चिंचालकर

स्वीडन में बर्फ की रोशनी

तेजी ग्रोवर



वह भारत से बाहर मेरे जीवन की पहली यात्रा थी। अलग-अलग भाषाओं के दस भारतीय कवियों को स्वीडन के कवि-लेखकों ने अपने देश बुलाया था। सभी लोग चौदह टापुओं को जोड़कर बने शहर स्टॉकहोम पहुँच रहे थे।

स्टॉकहोम बाल्टिक सागर के तट पर बसा है। बाल्टिक सागर में स्वीडन की सीमा में 24,000 छोटे-बड़े टापू हैं। कुछ टापुओं पर लोग रहते हैं, कुछ पर केवल जल पक्षी और पेड़। पानी से घिरे स्टॉकहोम शहर में मेपल, बलूत, भूर्ज और एस्पन नामक पेड़ों के रंग कैसे-कैसे बदल रहे थे! हमारी आँखों के सामने पेड़ हरे से लाल, पीले, सुनहरी और ताम्बई हो जाते थे। दिन की बेहद ठण्डी, नम धूप-छाँव में ऐसे पेड़ जो आपने कभी देखे न हों, पतझड़ में खाली हो जाने से पहले, क्या कमाल के रंग दिखा रहे थे! कई हज़ार झीलों का यह देश किस कदर सुन्दर दिखने लगा था। ऐसा तब तक होता जब तक दिन में धूप रहा करती। बहुत जल्दी फर और चीड़ को छोड़कर सारे पेड़ों से पत्ते गिर जाने वाले थे...।

उस यात्रा के दौरान हममें से कई लोगों के लिए "दिन" का अर्थ ही बदल जाने वाला था। उत्तरी ध्रुव और उसके आसपास के देशों में गर्मियों के मौसम में लगभग पूरे दिन सूरज रहता है और सर्दियों के महीनों में अधिकतर समय रात ही रहती है। जून के अन्त में स्टॉकहोम में दिन में लगभग 18 घण्टे दिन रहता है जबकि दिसम्बर के अन्त तक यह घटकर केवल 6 घण्टे रह जाता है। स्टॉकहोम उत्तरी ध्रुव के बहुत पास नहीं है। फिर भी सर्दियों के अँधेरों में दिन को महसूस करना मुश्किल था। हाँ, फिनलैण्ड की सर्दी में दिन का अधिकांश समय अँधेरे में डूबा रहता है। स्टॉकहोम में भी दिन के दो ढाई बजे अचानक जैसे कोई हम सब पर काला कम्बल फेंक देता हो...। जब हम मूर्खों की



तरह अँधेरे से घिर जाते। घुप्प अँधेरा।

एक दिन भारत फोन करने के इरादे से मैं एक टेलीफोन बूथ में गई। मुझे अपने मित्र रुस्तम से बात करनी थी। उन्हें फोन पर बुलाना पड़ता था। उनके दफ्तर फोन कर मैंने कहा कि मैं दस मिनट बाद दोबारा फोन करूँगी। मैं बूथ में खड़ी रही। जब लगा कि दस मिनट हो गए, मैंने फिर फोन किया। तो जो सज्जन रुस्तम को बुलाने गए थे मुझ पर बिगड़ने लगे, "मैडम, रुस्तम जी ढाई घण्टे यहाँ बैठे रहे आपके फोन के लिए। अभी-अभी गए हैं।" मैं एकदम डर गई। यह हो क्या रहा है? क्या कोई भयानक सपना है? मैंने कहा, "प्लीज़ उन्हें एक बार फिर बुला दीजिए। मैं तुरन्त फोन कर रही हूँ।" अगली बार मैंने तुरन्त फोन किया, लेकिन मुझे बताया गया कि मैंने एक घण्टे बाद फोन किया था। मैं रुस्तम से बात नहीं कर पाई। फोन से पीछा छुड़ाकर बाहर निकली और फूट-फूट कर रोने लगी। अपने कमरे में पहुँचकर मैंने अपने स्वीडी मित्र जैक को फोन किया। बड़ी मुश्किल से मैं उसे बता पाई कि मैं समझ नहीं पा रही कि मेरे साथ क्या हो रहा है। समय का कोई एहसास मुझे हो ही नहीं रहा था। अकेले में बैठकर रुलाई फूट रही थी। दो दिन पहले एक ट्रेन भी छूट गई थी क्योंकि घड़ी देखकर भी कुछ पल्ले नहीं पड़ रहा था।

जैक हमारे मेज़बान थे। वे हमें समझाने लगे कि सर्दियों के अँधेरे में बहुत से लोगों को यह खास किस्म का स्वीडी "डिप्रेशन" हो जाया करता है। भारत लौटने पर निश्चित ही कुछ हफ्तों में हम लोग ठीक हो जाएँगे। उनका कहना था कि इसका कारण शायद हमारी "शारीरिक घड़ी" का टूट जाना है। रात के अँधेरे में सो जाना और सुबह के उजाले में जाग जाना क्या यही थी हमारी "शारीरिक घड़ी"?

खैर, उधर जैक और अन्य स्वीडी मित्र हमें झीलों और जंगलों से भरे देश में लम्बी यात्राएँ करवा रहे थे। कई जगह मीलों मील तक मैदान, जंगल, झील – लेकिन इंसानों की कोई आबादी नज़र नहीं आती थी। सड़क पार करते हुए अगर कोई दिख जाता, तो उससे कई मीटर पहले कार या बस वाले अपनी गाड़ियाँ रोक लेते थे। कई बार हम लोग सड़क पार करते समय कारों के निकल जाने का इंतज़ार करते। लेकिन हम हैरान रह जाते जब देखते कि गाड़ियाँ ही हमसे कुछ दूर रुककर हमारे निकल जाने का इन्तज़ार कर रही हैं।



हम जैसे-जैसे पतझड़ से सर्दी की ओर बढ़ रहे थे, अँधेरा हर दिन को खाए चला जा रहा था। यानी अब ठण्डी, नम धूप कम से कमतर होती जा रही थी। जैक टोमास, लार्श, बिर्गित्ता, अन्ना लिएना, ये सब हमारे स्वीडी दोस्त भी अँधेरे से घबराने लग गए थे। हमने पूछा वे लोग बसन्त आने तक कैसे जिएँगे? वे बोले, अभी कुछ ही दिन में देखिए क्या होता है।

अँधेरा बढ़ रहा था। हम दस लोग एक बड़ी-सी गाड़ी से गॉटन बर्ग से स्टॉकहोम की ओर बढ़ रहे थे। कभी कोई जानवर हाइवे पर गाड़ी के सामने आ जाता – कभी हिरण या लोमड़ कभी "एल्क" या खरगोश। "एल्क" तो स्वीडन की वैसी ही पहचान है जैसे हमारे यहाँ मोर। अँग्रेज़ी में उसे Moose कहते हैं। इस बीच अचानक प्रसन्ना बोले, "अरे वाह! बर्फ गिरने लगी है!" हम लोग घुप्प अँधेरी रात में गिरती बर्फ में सड़क के किनारे खड़े थे। सामने मैदान में बर्फ की पर्त जम चुकी थी। प्रसन्ना तो अपने जूते उतारकर तुरन्त बर्फ में भाग लिए... अन्ना लिएना कुछ दूर चलकर बर्फ पर पीठ के बल लेट गई। फिर उसने आसमान की ओर ताकते हुए लेटे-लेटे बाहों को बर्फ पर नीचे से ऊपर तक घुमाया। फिर वह उठी। और हमने देखा कि जहाँ वह लेटी थी उसके नीचे मनुष्य के आकार का एक सुन्दर फरिश्ता था। बाँहें घुमाने से बर्फ पर उसके पंख बन गए थे। अन्ना लिएना ने ठण्ड के स्वागत में बर्फ का पहला फरिश्ता हमें दिखा दिया था।



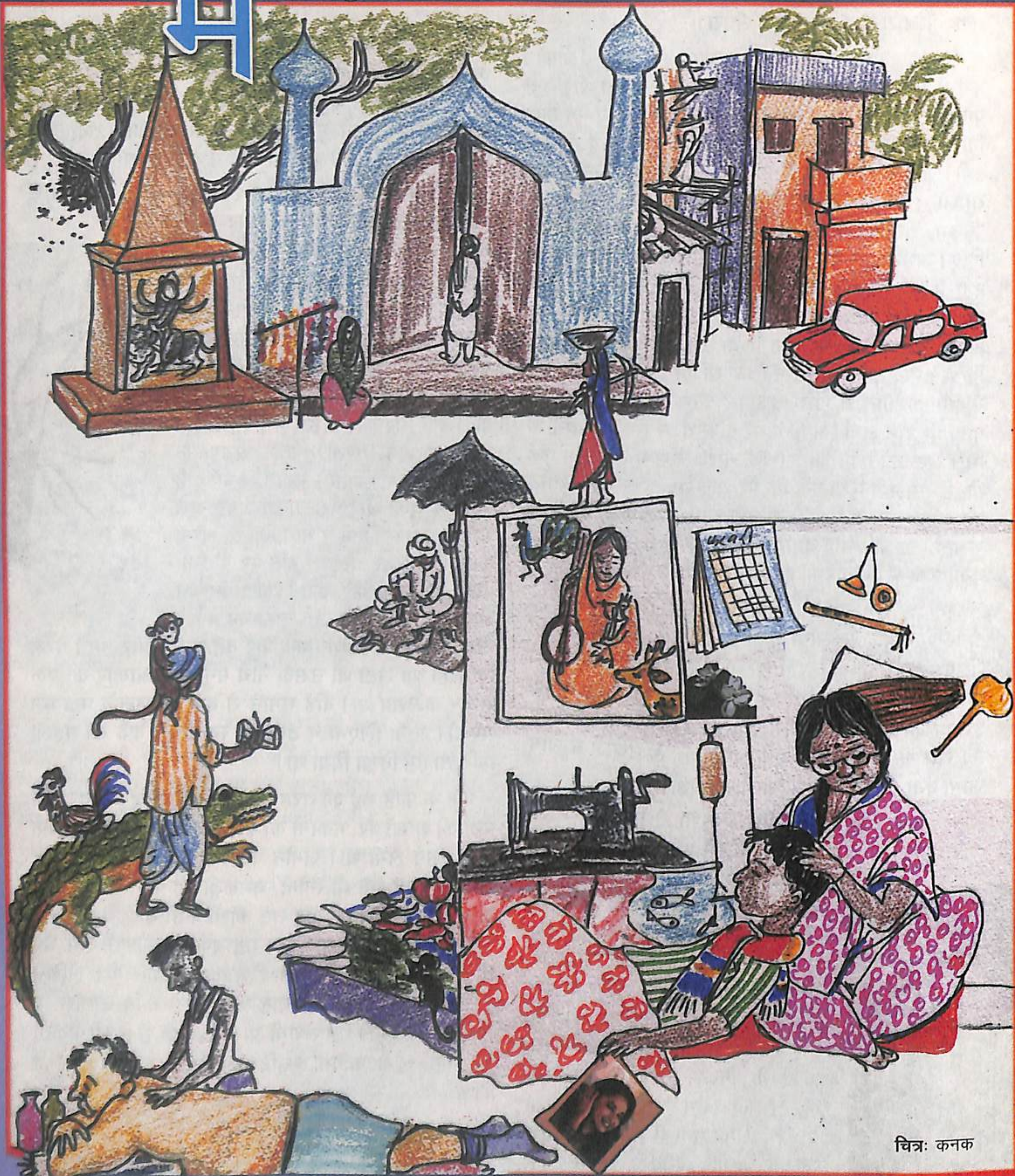
बर्फ के फाहे रुई की तरह हौले-होले गिर रहे थे। दूर तक पेड़ों की शाखों पर, मकानों की ढलवाँ टाइलों पर बर्फ ही बर्फ नज़र आने लगी थी। ज़मीन पर रोशनी गिर रही थी और ज़मीन से उठ रही थी सफेद, चमकती हुई बर्फ की रोशनी – काली रात में। लेकिन अब रात काली कहाँ थी... । हमें नहीं मालूम वह दिन था या रात। वह बर्फ की रोशनी हमें घेरे थी...। हम चाहते तो उसे दिन कह सकते थे। लेकिन स्वीडन के सबसे ज़्यादा चाहे जाने वाले कवि टोमास के शब्दों में मैं आपको यह रोशनी और भी अच्छे से दिखा सकती हूँ। अपनी एक कविता "सर्दियों में रात का शहर" में वे लिखते हैं:

ऐसा लग सकता है
कि जैसे बर्फ
रोशनी के सोने का ढंग हो

(यात्रा वृत्तांत, अक्टूबर 1997)

फोटो: इंटरनेट से साभार

इस पन्ने में म से शुरू होने वाली कितनी चीज़ें हैं?



चित्रः कनक

मैंने ढूँढीं.... ________________________________

____

"म" से शुरू होने वाली कौन-कौन-सी चीज़ें हमसे छूट गईं? उनके चित्र बनाओ।

माधव गाडगिल



दीमक

दीमक लकड़ी पचाने में बड़ी माहिर होती हैं। ये एक किस्म से सामाजिक कॉकरोच हैं। कॉकरोच इसलिए क्योंकि ये उनकी प्रजाति के काफी निकट हैं। और सामाजिक इसलिए क्योंकि ये अपने कामों को अलग-अलग स्तरों पर बाँटकर करते हैं, जैसे कुछ मज़दूर दीमक होती हैं, कुछ रक्षक और कुछ राजा-रानी दीमक। वैसे तो मधुमक्खियों और चींटियों में भी मज़दूर, सैनिक और राजा-रानी मक्खियों व चींटियों में काम बँटे होते हैं पर दीमक उनसे ज़रा अलग होती हैं। इनमें लिंग भेद नहीं होता। यानी मादा व नर दीमक साथ-साथ काम करते हैं।

जीव वैज्ञानिक कार्ल लीनियस ने इन्हें टरमाइट्स इसलिए कहा क्योंकि ये लकड़ी को पूरी तरह से टर्मिनेट (खत्म) कर देती हैं। लेकिन खुद बहुत लम्बे समय तक ज़िन्दा रहती हैं। बरसात में चूँकि खाने की कमी होती है इसलिए ये गर्मियों से ही अपने भोजन का प्रबन्ध करना शुरू कर देती हैं। वैसे तो दीमक कॉलोनियाँ बनाकर समूह में रहती हैं लेकिन गर्मियों में ये अपनी कॉलोनियाँ छोड़कर हवा में उड़ने लगती हैं। और ऐसा लगता है जैसे धुआँ-सा फैला हुआ हो।

उड़ने वाली दीमक बड़ी मात्रा में प्रोटीन व वसा पैदा करती हैं ताकि अपनी नई कॉलोनियाँ बना सकें और इनको अपना घर छोड़कर खाने की तलाश में इधर-उधर भटकना ना पड़े। बेशक, सभी दीमक नई कॉलोनियाँ नहीं बना पातीं। जो बना पाती हैं वे बच जाती हैं और जो नहीं बना पातीं वो भूखे मेंढकों, छिपकलियों, पक्षियों व चमगादड़ों की शिकार बन जाती हैं।

दीमकें

दीमकों को
पढ़ना नहीं आता

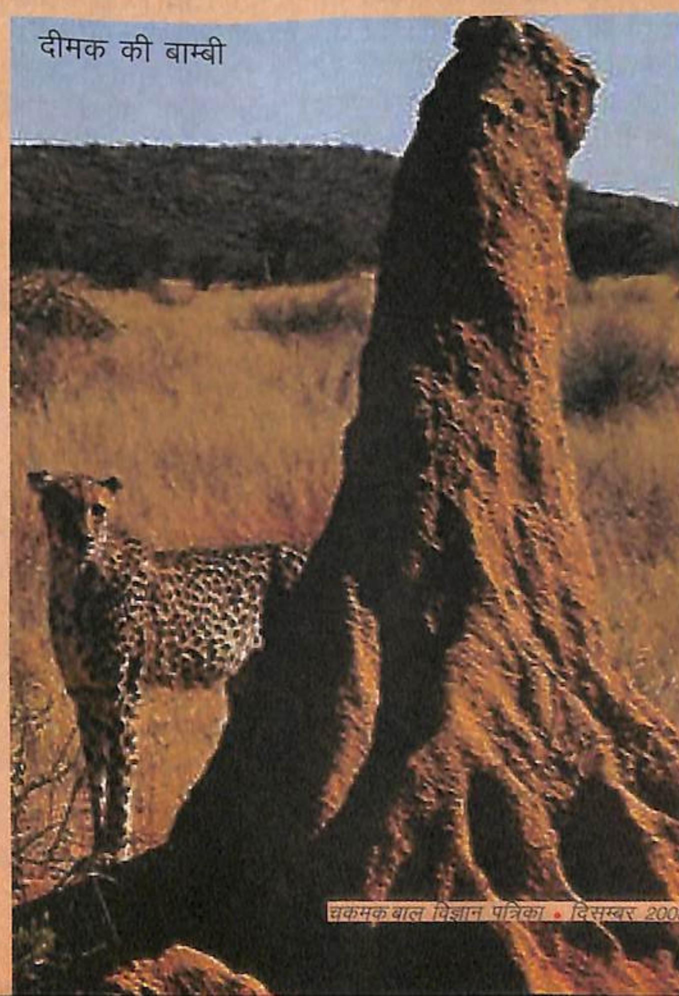
वे चाट जाती हैं
पूरी
किताब



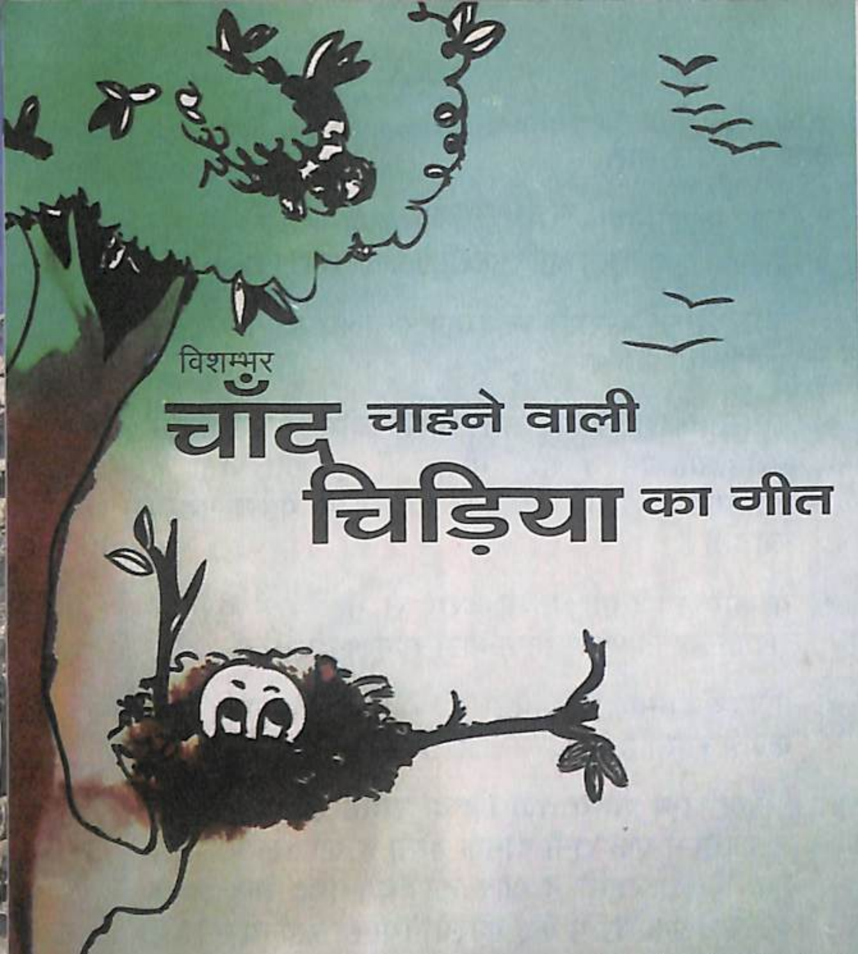
नरेश सक्सेना

कुछ मज़ेदार बातें

- कुछ कॉलोनियों में मज़दूर दीमक बगीचे बनाती हैं। इनमें वे कुकुरमुत्ता आदि जैसी फफूँद उगाती हैं।
- कुछ दीमक बरसात से बचाव के लिए अपने घर पर छतरीनुमा छत बनाती हैं।
- रेगिस्तान में पाई जाने वाली दीमकों की कुछ प्रजातियाँ गर्म व सूखे मौसम में भूमिगत पानी के इस्तेमाल के लिए 125 फीट से अधिक गहरा गड्ढा खोदती हैं।
- ये कागज़ जितनी पतली दरार से भी घर में घुसकर घर के हर हिस्से में धावा बोल सकती हैं।
- मज़दूर दीमक अँधी होती हैं। वे चौबीसों घण्टे काम करती रहती हैं।
- दीमक लम्बे समय तक ज़िन्दा रहती हैं। इनकी हर कॉलोनी में एक रानी दीमक होती है जो 15-30 साल तक ज़िन्दा रहती है और हर दिन 100 तक अण्डे देती है। एक घर में कई कॉलोनियाँ हो सकती हैं।
- दीमक से होने वाले नुकसान से बचने के लिए कोई बीमा नहीं होता।



दीमक की बाम्बी



विशम्भर

चाँद चाहने वाली चिड़िया का गीत

आधी रात थी। लगभग आधी रात। ओस से भीगे घोंसले में चिड़िया की नींद खुल गई। सिर घोंसले से निकालकर उसने बाहर झाँका। आसमान में एकदम दूधिया उजाला था – बर्फ-सा सफेद। ऐसा तो उसने पहले कभी देखा ही न था। चाँद और उसकी चाँदनी ने चिड़िया का मन मोह लिया। रात में नींद भी तो आज ही खुली थी। देर तक देखती रही वो। बहुत देर तक...। देखती रही, सोचती रही – कितना सुन्दर! कैसा चमकता हुआ गोल-मटोल चाँद। बर्फ जैसी सफेद झक चाँदनी।

"मैं वहाँ जाना चाहती हूँ। पर वो तो दूर है आसमान में।"

"ऐसा भी कितनी दूर होगा? आसमान से तो वो काफी नीचे ही है। दिख तो रहा ही है और क्या? मैं दाना चुगने भी तो कितनी दूर जाती हूँ। उससे भी क्या दूर होगा?"

"मुझे जाना है! जाना है!" उसका मन लगातार यही कहता रहा। "इतनी दूर जाऊँगी तो दाना कहाँ चुगूँगी? पानी कहाँ पिऊँगी? थक जाऊँगी तो सुस्ताऊँगी कहाँ? अब तो चाँद की राह में ही सुस्ताऊँगी।" वह सोचती रही।

"दानों की एक पोटली अपने साथ ले लूँगी। चोंच तो दुखेगी पर ऐसा करूँगी पोटली को गर्दन में लटका लूँगी। कहीं उसके वज़न से मेरी गर्दन ही न लटूम जाए? गर्दन लटूम गई तो चाँद के रास्ते में अच्छा-खासा मज़ाक बन जाएगा मेरा। सुन्दर चाँद को यह बात पता चली तो? ओह! क्या सोचेगा चाँद मेरे बारे में। चाँद की इच्छुक चिड़िया में इतनी भी अक्ल नहीं। नहीं-नहीं पोटली नहीं ले जाऊँगी।"

"तो फिर? तो फिर क्या? अरे चाँद के रास्ते में क्या खेत नहीं होंगे? खेत जो ज़रूर ही होंगे। पर खेत कहना भी चाहिए क्या उन्हें? वे तो फसलों के हरे समुन्दर होंगे। फसलों के हरे समुन्दर ही कहना चाहिए चाँद के रास्ते में पड़ने वाले खेतों को। ओह! आसमान के खेत देखने का भी तो पहला ही मौका होगा यह मेरे लिए। मैं इन छोटी-छोटी बातों को तो भूले ही जा रही हूँ।" वह सोचती जा रही थी।

"चुग्गे का इन्तज़ाम तो हुआ। पर पानी? पानी की बदलों में क्या कमी? पानी तो मैं बादलों से ही पी लूँगी। रात तो आधे रास्ते में ही बीत जाएगी। पर मैं उड़ती रहूँगी। वहाँ पहुँचकर ही आराम करूँगी। वहाँ आराम कर रही होऊँगी तब चाँद भी तो वहीं होगा। बिल्कुल सटकर ही बैठा हुआ। बल्कि वह तो यह भी देख रहा होगा कि मैं कैसे आराम करती हूँ।"

"मैं सोचती ही रहूँगी या उड़ूँगी भी अब?" और वह उड़ चली। अपने ओस से भीग रहे खरपतवार के घोंसले को अलविदा कहना भी उसे याद न रहा। सफेद चाँदनी में सरसों के पीले खेतों के ऊपर से कोहरे में उड़ती चिड़िया किसी धब्बे की तरह तिरती दिख रही थी। उड़ती गई वह। उड़ती गई। उड़ती गई। उड़ती ही गई। बादलों में पहुँची तो वहाँ पानी नहीं था। बादल भी बादल-सा बादल नहीं था। घोंसले से जैसा दिखता था वह तो था ही नहीं। कुछ और ही था।

"आह! सुन्दर चाँद तो अब भी उतना ही दूर था जितना घोंसले से दिखाई दे रहा था।"

उसका मन उदास होने लगा। उड़ते-उड़ते उसे बहुत समय हो गया था। थकान होने लगी थी उसे। पर यह क्या! यह रात किन सुर्ख रोशनियों में घुलने लगी? अलभोर का नारंगी सुहानापन सारे आकाश में फैल गया। "अरे, यह तो सूरज निकल आया! चाँद कहाँ गया?" चिड़िया चहकी। गो कि उसके चहकने का वक्त हो गया।

उसने वापस अपने घोंसले में लौटने का मन बनाया। लौट तो रही थी वह, पर दुखी बहुत थी। इसलिए नहीं कि थक गई थी। बल्कि इसलिए कि जिस अनूठे सौन्दर्य को उसने घोंसले से देखा था वह उस तक पहुँच नहीं पाई थी। वह अपने घोंसले में जाकर सो गई।

हर सुबह की तरह उस सुबह भी संसार के सारे पक्षी उड़ते हुए सारी धरती पर फैल गए थे। लेकिन एक चिड़िया चुग्गे की तलाश में नहीं आई। कोई भी नहीं जानता कि एक घोंसले में एक चिड़िया दिन के वक्त क्यों सो रही है?

दिन जाते हैं, रातें आती हैं। वह चिड़िया रात को जाग-जागकर अब भी चाँद को देखती है। मन तो उसका अब भी करता है चाँद पर जाने का, पर जाए कैसे? इतनी दूर। दूर से भी दूर।



रात के आसमान में अब भी अकेली चिड़िया उड़ती दिख जाती है। उसे देख रात की हवाएँ चाँद की इच्छुक चिड़िया के लिए गाती हैं:

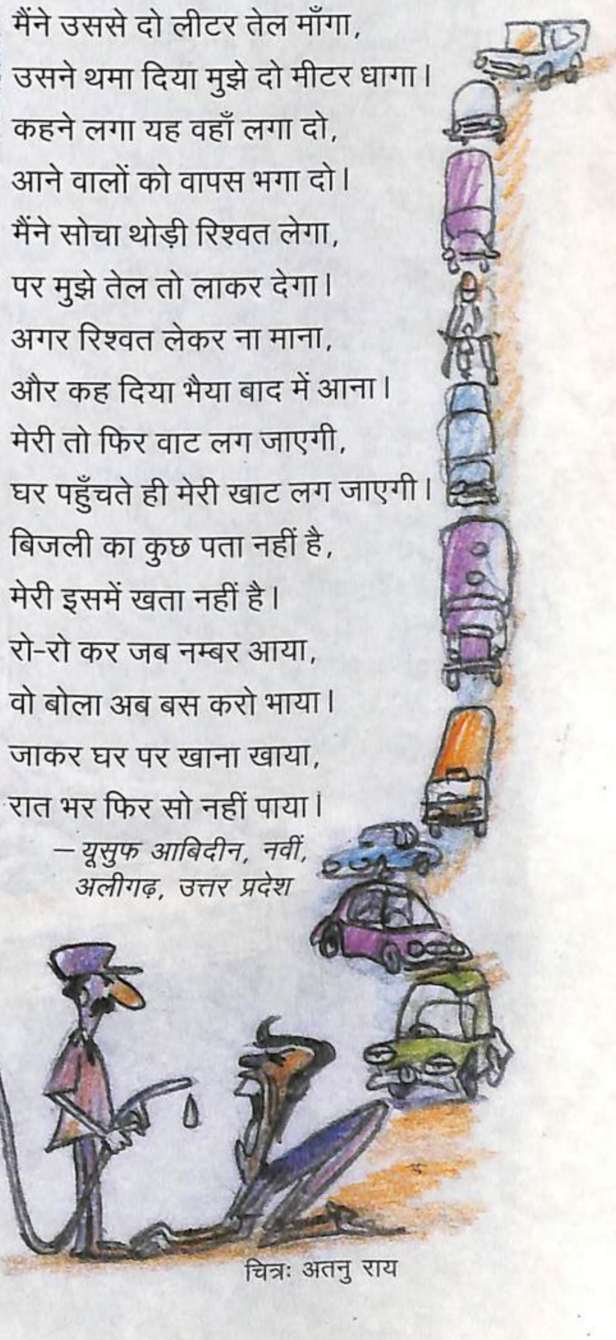
दूर तो
दूर से भी दूर है
मगर चाँद तो उससे भी दूर है
चाँद से दूर तो कुछ भी नहीं है!

चित्रः नेहा बहुगुणा

हाय! बिजली

एक रात मैं पहुँचा पेट्रोल पम्प,
वहाँ मचा हुआ था बड़ा हड़कम्प।
मैंने पूछा क्या हुआ भाई,
बिजली हो गई हवा हवाई।
लोग तेल के लिए मरे जा रहे थे,
एक दूसरे का गला दबा रहे थे।
लगी एक लम्बी कतार थी,
तेल की तो साहब, बड़ी मार थी।
मैंने उससे दो लीटर तेल माँगा,
उसने थमा दिया मुझे दो मीटर धागा।
कहने लगा यह वहाँ लगा दो,
आने वालों को वापस भगा दो।
मैंने सोचा थोड़ी रिश्वत लेगा,
पर मुझे तेल तो लाकर देगा।
अगर रिश्वत लेकर ना माना,
और कह दिया भैया बाद में आना।
मेरी तो फिर वाट लग जाएगी,
घर पहुँचते ही मेरी खाट लग जाएगी।
बिजली का कुछ पता नहीं है,
मेरी इसमें खता नहीं है।
रो-रो कर जब नम्बर आया,
वो बोला अब बस करो भाया।
जाकर घर पर खाना खाया,
रात भर फिर सो नहीं पाया।

— यूसुफ आबिदीन, नवीं, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश



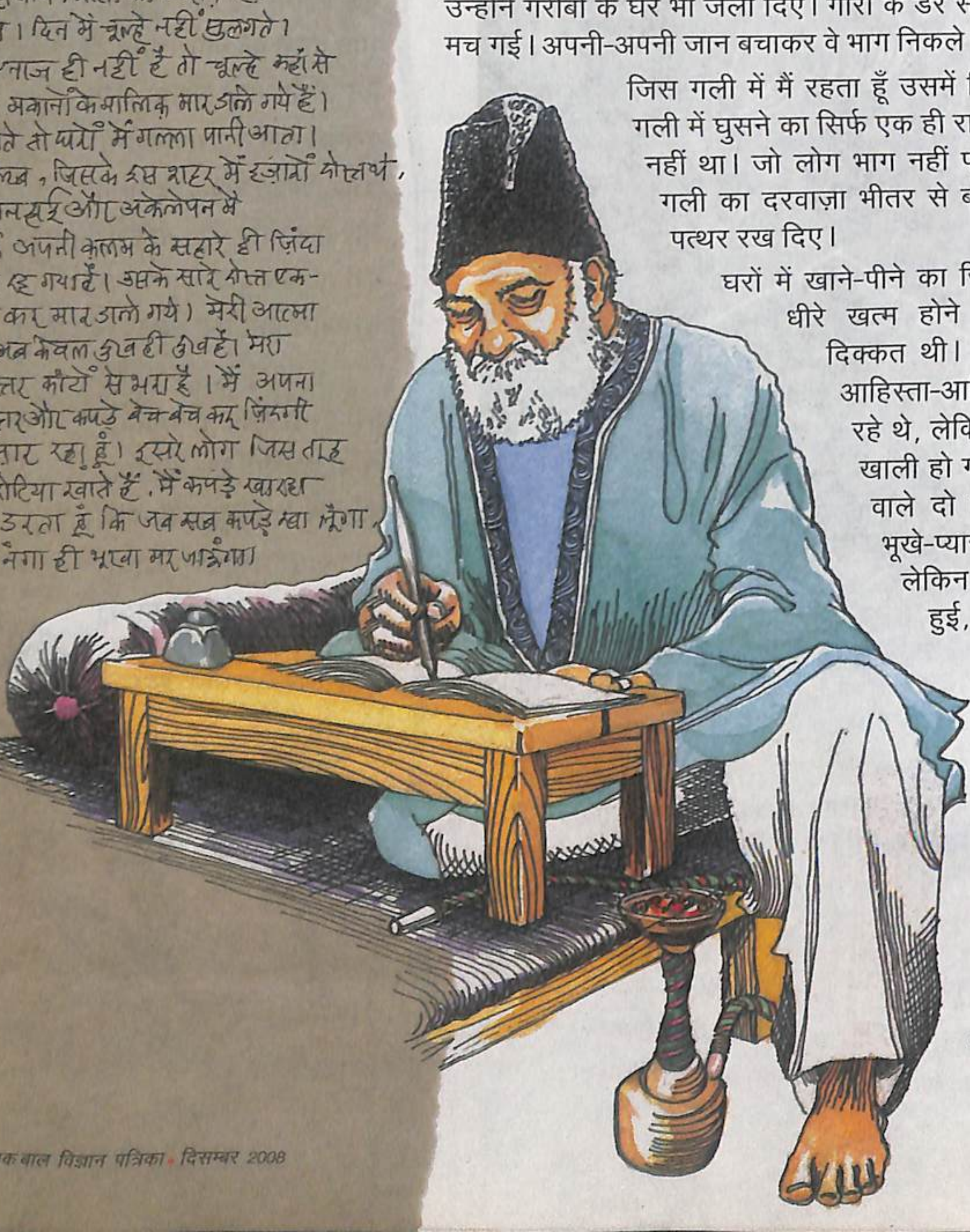
चित्रः अतनु राय

तुमने गालिब का नाम ज़रूर सुना होगा। वे उर्दू के सबसे बड़े शायर कहे जाते हैं। इस कारण विश्व साहित्य में भी उनका नाम है। वे दिल्ली के रहने वाले थे। आखिरी मुगल बादशाह बहादुरशाह ज़फर को खुद भी शायरी का शौक था। गालिब उनके दोस्त थे। सन् 1857 में भारत की पहली जनक्रान्ति हुई। हज़ारों निर्दोष व्यक्तियों को आज़ादी की इस लड़ाई में अँग्रेज़ों ने मार डाला। गालिब उन दिनों दिल्ली में थे। अँग्रेज़ों के अत्याचारों को खुद उन्होंने देखा। तब उन्होंने एक डायरी लिखी थी – दस्तम्बू। दस्तम्बू में गालिब ने 1857 में दिल्ली का हाल लिखा है। इसमें साधारण आदमी की मुसीबत और भूख तथा प्यास से तड़पते लोगों का भी ज़िक्र है।

डॉ. कैलाश नारद

गदर में गालिब

'ये बातें, जिनका लिखना ज़रूरी नहीं था, सिर्फ इसलिये लिखीं कि इन लोगों की दोस्तदिली और हमदर्दी का शुक्रिया अदा हो जाये। रातों को चिराग नहीं जलते। दिन में चूल्हे नहीं सुलगते। जब अनाज ही नहीं है तो चूल्हे कहाँ से जलें। मकानों के मालिक मार डाले गये हैं। वे होते तो घरों में गल्ला पानी आता। गालिब, जिसके इस शहर में हज़ारों दोस्त थे, इस तनहाई और अकेलेपन में सिर्फ अपनी कलम के सहारे ही ज़िंदा बचा रह गया है। उसके सारे दोस्त एक-एक कर मार डाले गये। मेरी आत्मा में अब केवल दुख ही दुख है। मेरा बिस्तर काँटों से भरा है। मैं अपना बिस्तर और कपड़े बेच-बेच कर ज़िंदगी गुज़ार रहा हूँ। दूसरे लोग जिस तरह से रोटियाँ खाते हैं, मैं कपड़े खा रहा हूँ। डरता हूँ कि जब सब कपड़े खा लूँगा, तो नंगा ही भूखा मर जाऊँगा।



गालिब ने दस्तम्बू में लिखा है...

अँग्रेज़ों ने दिल्ली में आते ही सीधे-सादे लोगों को मारना शुरू कर दिया। उन्होंने गरीबों के घर भी जला दिए। गोरों के डर से दिल्ली वालों में भगदड़ मच गई। अपनी-अपनी जान बचाकर वे भाग निकले।

जिस गली में मैं रहता हूँ उसमें सिर्फ दस-बारह घर थे। गली में घुसने का सिर्फ एक ही रास्ता था। वहाँ कोई कुआँ नहीं था। जो लोग भाग नहीं पाए उन सब ने मिलकर गली का दरवाज़ा भीतर से बन्द कर दिया और वहाँ पत्थर रख दिए।

घरों में खाने-पीने का जितना सामान था, धीरे-धीरे खत्म होने लगा। पानी की बड़ी दिक्कत थी। लोग बड़ी सावधानी से आहिस्ता-आहिस्ता उस पानी को पी रहे थे, लेकिन आखिकार वे घड़े भी खाली हो गए। ऐसे में गली में रहने वाले दो दिन और दो रात तक भूखे-प्यासे समय काटते रहे। लेकिन जब प्यास बर्दाश्त नहीं हुई, तो परेशान लोगों ने गली का दरवाज़ा खोल दिया। वे पानी की तलाश में बर्तन लेकर निकल पड़े। लेकिन पानी तो दूर-दूर तक कहीं नहीं था। शोरा बारूद बनाने के काम में आता है।

उसी शोरे का पानी जब आसपास मिला तो गली वाले उस पानी को घरों

में ले आए। वैसे ज़हरीले पानी को पीकर ही उन्होंने प्यास बुझाई। वह पानी इतना कड़वा और बदबूदार था कि लगा जैसे पानी नहीं, मौत पी रहे हों।

एक दिन बरसात हुई। खूब पानी बरसा। हमने एक चादर बाँध ली और एक मटका उसके नीचे रख दिया। वह पानी ही उस वक्त हमारे लिए सबसे बड़ी दौलत थी।

असली मुसीबत 5 अक्टूबर 1857 को आई, जब कुछ अँग्रेज़ मेरे घर में घुस आए। उन्होंने मेरे साथ मेरे दोनों बच्चों और नौकरों के साथ ही कुछ पड़ोसियों को भी गिरफ्तार कर लिया। वहाँ से कुछ दूरी पर कर्नल ब्राउन नाम का एक अँग्रेज़ अफसर था। गिरफ्तार किए गए लोग एक-एक कर उसके सामने पेश किए जा रहे थे। ब्राउन का चेहरा सुर्ख था। आँखें भी लाल-लाल थीं। उसकी ऊँचाई छह फुट से भी ज़्यादा थी। उसने मुझसे पूछा, "आप क्या करते हैं?"

मैंने कहा, "उर्दू में कविता लिखता हूँ।"

"तो तुम पोयट हो?" उसने कहा।

मैंने सिर हिलाकर हामी भरी। "हाँ।"

मेरे जवाब से ब्राउन को खुशी हुई। उसने अपने सिपाहियों को हुक्म दिया, "इनको इज़्ज़त के साथ घर वापस छोड़ आओ।"

मैंने कर्नल ब्राउन से निवेदन किया कि मेरे साथ गिरफ्तार किए गए पड़ोसी बेहद सीधे-सादे लोग हैं। उन्हें भी रिहा कर दिया जाए।

"ये लोग भी कविता करते हैं।" मैंने कहा।

कर्नल ने उनको भी घर जाने की इजाज़त दे दी। इस तरह कविता के कारण उस रोज़ करीब पचास आदमियों की जानें बच गईं।

हम गली वालों ने तो किसी तरह अपने प्राण बचा लिए, मगर मैं उन हज़ारों अभागे दिल्ली वालों के बारे में क्या कहूँ, जो हवालात और कैदखाने में बन्द कर दिए गए थे। जेल शहर से बाहर थी और हवालात दिल्ली के भीतर। इन दोनों ही जगहों में बेशुमार बेगुनाहों को ठूँस-ठूँसकर भर दिया गया था – इस कदर भर दिया गया कि लगता था, आदमी के भीतर आदमी समाया जा रहा हो। साँस लेने में भी दिक्कत हो रही थी। इन दोनों ही कैदखानों के बन्दियों को बाद में फाँसी दे दी गई। नहीं मालूम, कितने लाख लोग मार डाले गए।



चित्रः दिलीप चिंचालकर

दिल्ली में अब कुछ ही हज़ार लोग बचे होंगे। बाकी सब, अँग्रेज़ों के गुस्से का शिकार हो गए। बचे सिर्फ वे, जो दिल्ली से भाग गए। वे लोग खुशकिस्मत थे, वरना उन्हें भी फाँसी दे दी जाती। दिल्ली में रहना ही उन दिनों मानों अपराध हो गया था।

मेरी पहचान का भिश्ती था – चिराग अली। बेहद सीधा आदमी। रोज़ सुबह-शाम नहर का पानी अपनी मशक में भरता और अल्लाह के गुण गाता हुआ सड़कों को सींचा करता। खाने के लिए जो भी रूखी-सूखी मिल जाती उसी को गले के नीचे उतार अपने में मगन रहता। एक रोज़ दिल्ली के बड़े हाकिम हडसन साहब जब सड़क से अपने घोड़े पर सवार होकर निकल रहे थे, चिराग अली सड़क सींच रहा था। उसने हडसन साहब को सलाम नहीं किया, ईश्वर के गुण गाता रहा। हडसन साहब को जो गुस्सा आया, उन्होंने अपनी तलवार से अभागे चिराग अली का पेट चीर डाला और उसकी लाश दिल्ली दरवाज़े पर टाँग दी। इन्हीं हडसन साहब ने बादशाह बहादुर शाह जफर के दोनों बेटों शाहज़ादा फज़ल और मिर्ज़ा अबू बकर का भी खून कर उनके सिर दिल्ली दरवाज़े पर लटका दिए थे। हडसन को हिन्दुस्तानियों का खून करने में बड़ा मज़ा आता था।

मेरे पड़ोस में एक गरीब औरत मेहरुन्निसा रहती हैं। उसके पति की मौत को सात साल हुए हैं। अकेली औरत। दूसरों के घर में झाड़ू

शेष पृष्ठ 31 पर

"जाता हूँ माँ।" कालू ने घर से निकलते हुए माँ से कहा।

"अच्छा बेटा, अपना ख्याल रखना।" माँ ने खाट पर पड़े-पड़े खाँसते हुए कहा।

कालू बदरी के घर पहुँचा। फिर दोनों रेल्वे स्टेशन की ओर चल दिए। थोड़ी देर बाद पठानकोट एक्सप्रेस आई। कालू और बदरी दोनों स्लीपर क्लास के अलग-अलग डिब्बों में चढ़ गए।

ट्रेन चलने लगी तो कालू ने अपनी शर्ट उतारी और उसी से डिब्बे का कचरा साफ करते हुए आगे बढ़ने लगा। पिछले दिन कालू बदरी के साथ आया था। उसने देखा कि स्लीपर क्लास के डिब्बे में यात्रियों के बैठने के लिए कई अलग-अलग हिस्से होते हैं। कूड़ा इकट्ठा करते और उसे ढकेलते हुए वह पहले हिस्से में पहुँचा ही था कि एक यात्री ने चिल्लाकर कहा, "चल आगे बढ़। चले आते हैं भीख माँगने। बाप दारू पिए पड़ा होगा कहीं, भेज दिया बच्चे को धँधा करने।" आठ साल के कालू का मन सिहर उठा। आज उसका पहला दिन था पैसा माँगने का। उसे याद आया। बाबूजी मज़दूरी करते थे। वह, उसकी दो छोटी बहनें रानी और गुड़िया, माँ, बाबूजी सभी अच्छे से रहते थे। दो महीने पहले मज़दूरी करते समय, बाबू जी मकान की छत गिरने से खतम हो गए। उसके बाद जैसे मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। माँ ने जैसे-तैसे दो घरों में झाड़ू-पोंछे का काम सम्भाला। पिछले चार दिनों से माँ को तेज़ बुखार, खाँसी है। वह काम पर नहीं जा पा रही है। अब तो घर में खाना बनाने को भी कुछ नहीं बचा है।

तभी कालू को ध्यान आया कि उसके मोहल्ले के दोस्त बदरी ने उसे बताया था कि वह रेल के डिब्बे में कचरा साफकर पैसा लाता है। बदरी के माँ-बाप बचपन में मर गए थे। वह मौसी के पास रहता है।

घर में जब चूल्हा बन्द हो गया तो कालू ने बदरी से कहा कि वह भी उसके साथ चलेगा। कल कालू बदरी के साथ रहा और उसने उसे कचरा साफ करते और पैसा माँगते देखा।

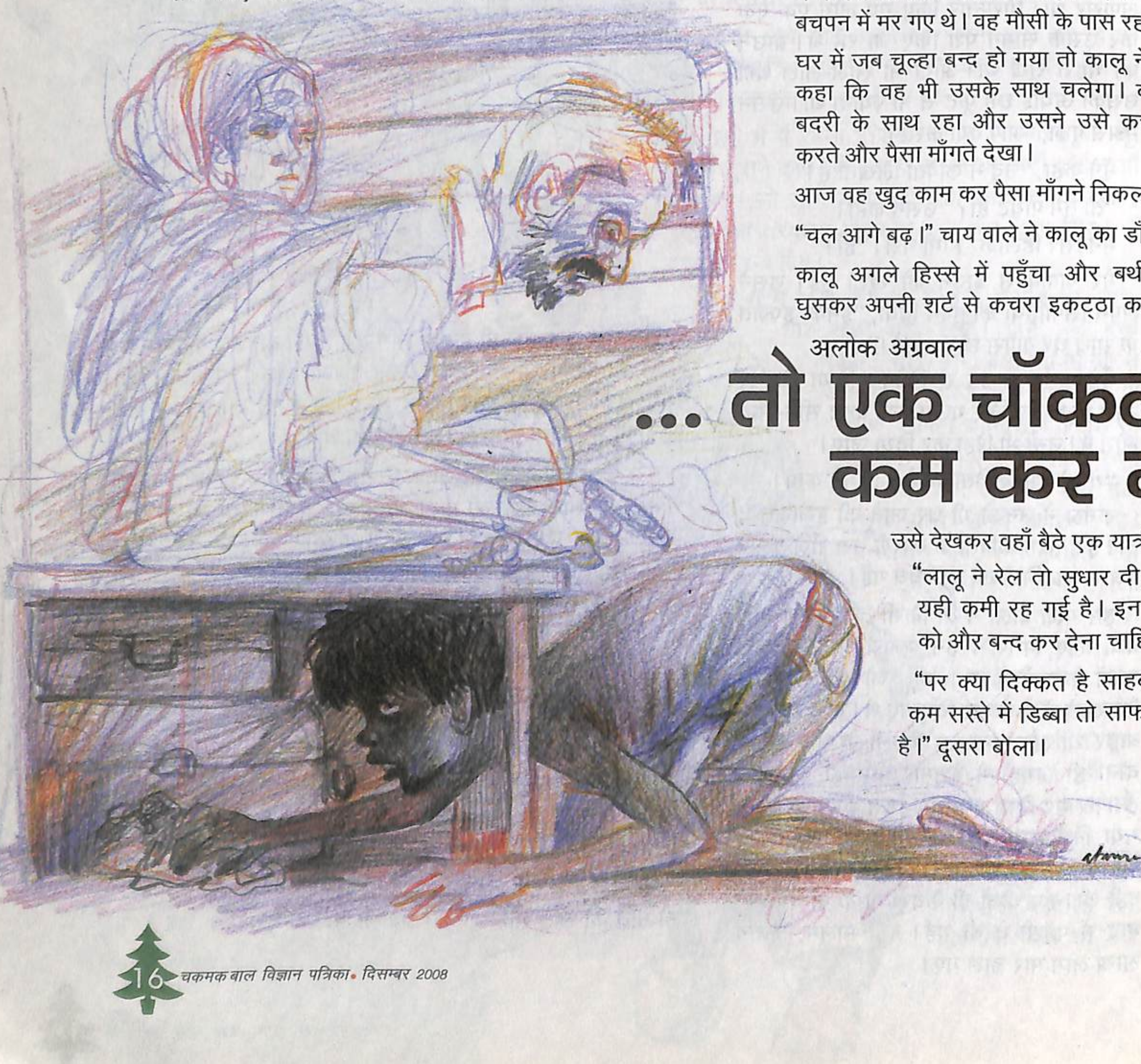
आज वह खुद काम कर पैसा माँगने निकला था।

"चल आगे बढ़।" चाय वाले ने कालू का डाँटा।

कालू अगले हिस्से में पहुँचा और बर्थ के नीचे घुसकर अपनी शर्ट से कचरा इकट्ठा करने लगा।

अलोक अग्रवाल

... तो एक चॉकलेट कम कर दो!



उसे देखकर वहाँ बैठे एक यात्री ने कहा, "लालू ने रेल तो सुधार दी, बस एक यही कमी रह गई है। इन भिखमँगों को और बन्द कर देना चाहिए।"

"पर क्या दिक्कत है साहब, कम से कम सस्ते में डिब्बा तो साफ हो जाता है।" दूसरा बोला।

"सस्ता नहीं भाई! बहुत महँगा पड़ता है यह। पूरे चोर होते हैं ये साले।" तीसरे ने पहले का समर्थन करते हुए कहा।

कचरा साफ कर कालू ने जब हाथ आगे बढ़ाया तो उनमें से एक ने एक रुपया देकर कहा, "बस, आगे बढ़।" जैसे कि सबकी तरफ से बहुत बड़ी सम्पदा दे दी हो।

कालू ने देखा अगले हिस्से में दो छोटे-भाई खूब खुश होकर खिलौने से खेल रहे हैं। बन्दर की पूँछ में लगी चाभी को मरोड़ने पर वह पेट पर बँधी ढोलक को ज़ोर-ज़ोर से बजाने लगता। कालू का मन किया कि उसके पास भी खिलौने होते तो कितना मज़ा आता। वह कई दिनों से अपनी छोटी बहनों को लाल पहिए वाली खिलौने की कार देने की सोच रहा था।

बच्चे कौतूहल से कालू को देख रहे थे। उनके पिता जी ने कालू को कुछ पैसे दिए।

कालू आगे बढ़ा तो सामने आइसक्रीम वाला खड़ा था। वहाँ बैठे सज्जन ने पूछा, "कैसे दी आइसक्रीम?"

"बारह रुपये की एक।"

"पाँच दे दो।" कहकर उसने आइसक्रीम ली और पति पत्नी और तीन बच्चे आइसक्रीम खाने लगे। कालू को याद आया कि पिछले साल मोटी माता के मेले में पिताजी ने उन्हें कुल्फी खिलाई थी।

उस हिस्से को साफ कर उसने पैसे के लिए हाथ बढ़ाया तो वही सज्जन अपनी पत्नी से बोले, "कल रात वाला खाना रखा है न। फेंकने से अच्छा है इसे दे दो।"

और पत्नी ने एक छोटी-सी थैली कालू को पकड़ा दी।

कालू आगे बढ़ा तो देखा कि एक छोटा बच्चा चुपचाप एक किताब पढ़ रहा है। उसे आसपास की दुनिया की कोई परवाह न थी। कालू को याद आया कि पिछले साल वह भी तो पहली कक्षा में पढ़ने जाता था। स्कूल में उसे बड़ा मज़ा आता था। बाबूजी माँ से कहते थे कि वे उसे पढ़ाकर मास्टर बनाएँगे। बाबूजी अपनी न पढ़ पाने की कसक को इस तरह पूरा करना चाहते थे। बाबूजी के जाने के बाद कालू को स्कूल छोड़ना पड़ा। इतने में कुछ और यात्रियों ने कालू के हाथ में कुछ पैसे डाल दिए।

आगे बढ़ते-बढ़ते वह एक हिस्से में पहुँचा जहाँ कुछ लोग बीच में अटैची रखकर पत्ते खेल रहे थे। जैसे ही कचरा निकालने के लिए वह बर्थ के नीचे झुका, उनमें से एक ज़ोर से लात मारते हुए चिल्लाया, "चल भाग यहाँ से। भिखमँगा कहीं का।" कालू एक तरफ लुड़क गया। वह बुरी तरह से डर गया था। उसका मन ज़ोर से रोने को हुआ।

फिर कुछ हिम्मत कर वह अगले हिस्से में कचरा निकालने लगा। उसने देखा कोने में बैठी सफेद बालों वाली बूढ़ी महिला बड़े प्यार से उसे देख रही है। कालू की हिम्मत बढ़ी और उसने जल्दी-जल्दी सारा कचरा निकाल दिया। जब उसने पैसे के लिए हाथ बढ़ाया तो उस महिला ने अपने पर्स से 10 रु. का नोट निकालकर उसकी हथेली में रख दिया। दस रुपए देख कालू चौंक गया। महिला ने कालू के सिर पर हाथ फेरकर कहा, "बेटा, रख लो।" जैसे कह रही हो कि इससे ज़्यादा वह उसके लिए कुछ नहीं कर सकती।



रेलगाड़ी धीरे होने लगी।

बनापुरा आ रहा था। यहाँ कालू को उतरना था और तीन घण्टे बाद लौटने वाली जनता एक्सप्रेस पकड़नी थी। गाड़ी रुकने पर कालू उतरकर सामने प्लेटफार्म पर बैठ गया। इतने में दूसरे डिब्बे से उतरकर बदरी भी आ गया और बोला, "चल, बाहर चलकर कुछ खाकर आते हैं।"

"नहीं, मुझे भूख नहीं है। तू खाकर आजा।" कालू बोला। पैसे बचाने के लिए वह कोई खर्चा नहीं करना चाहता था।

बदरी चला गया। कालू को ज़ोर की भूख लगी थी। उसने अपनी निक्कर की जेब से खाने की थैली निकाली। सब्ज़ी खराब होकर बुरी गन्ध मार रही थी। कालू ने सब्ज़ी को फेंका और तीन सूखी पूरियों को जल्दी-जल्दी खा गया। पास के नल से पानी पिया और वापस वहीं आकर बैठ गया। थकान इतनी थी कि पता ही न चला कब उसे नींद आ गई। अचानक आँख खुली तो देखा कि बदरी हिलाहिलाकर उसे जगा रहा है, "चल उठ, जनता आने वाली है।"

जनता एक्सप्रेस आते ही कालू और बदरी अलग-अलग डिब्बों में चढ़ गए। कालू ने फिर से अपनी शर्ट से कचरा साफ करके पैसा माँगना शुरू कर दिया। एक डिब्बे से दूसरे, दूसरे से तीसरे में पहुँचते-पहुँचते उसका स्टेशन खिरकिया आ गया। कालू गाड़ी से उतरा। ज़ोर से अपनी शर्ट को झाड़कर पहना और सामने की बैंच पर बैठ गया। बदरी यह कहते हुए निकल गया कि उसे जल्दी जाना है।

कालू दिन भर की कमाई गिनने लगा। कुल 32 रुपये मिले थे। उसने इस खज़ाने को सम्भालकर अपनी जेब में भरा ही था कि उसके गाल पर एक ज़ोर का चाँटा पड़ा।

"क्यों बे साले, क्या कर रहा है यहाँ?" हवलदार दहाड़ा।

सहमे हुए कालू ने जेब से 5 रु. निकालकर हवलदार को दे दिए। बदरी ने उसे बताया था कि यदि हवलदार आए तो 5

रु. दे देना। "चल, निकल जा यहाँ से।" हवलदार रुपए जेब में रखते हुए आगे बढ़ गया।

कालू स्टेशन से बाहर आकर सबसे पहले दवाई की दुकान पर गया और माँ के लिए बुखार, खाँसी की दवाई खरीदी। आगे सब्ज़ी वाले से प्याज़ व मिर्ची ली। अगली दुकानवाले को आधा किलो चावल, डेढ़ सौ ग्राम दाल और 1 रु. वाली तीन चॉकलेट देने को कहा।

"कितना हुआ?" उसने दुकानदार से पूछा।

"7 का चावल, 5 की दाल, 3 की चॉकलेट, 15 हुए।" दुकानदार ने जोड़कर बताया।

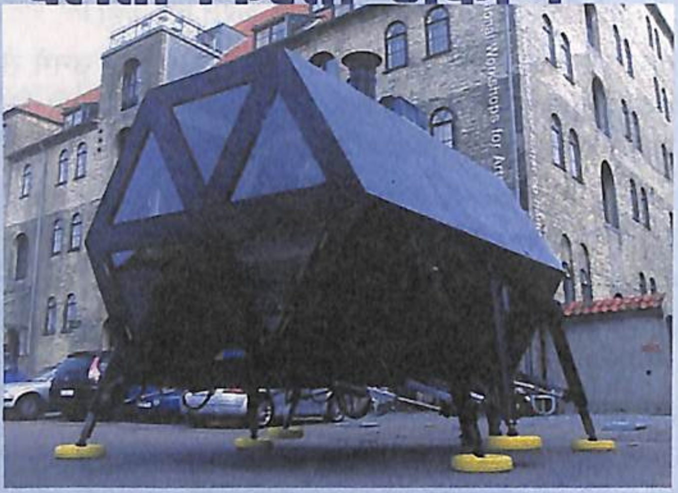
कालू ने जेब के सारे पैसे गिने – 14 रुपए बचे थे।

"अच्छा, एक चॉकलेट कम कर दो।" कहकर उसने 14 रु. दुकानदार को दे दिए।

दुकान से बाहर आकर कालू का मन खुशी से भर गया। उसकी थकान, गाली-लातों का दर्द सब दूर हो गया था। वह सोचने लगा कि जब वह घर पहुँचेगा तो रानी और गुड़िया दौड़कर उससे चिपट जाएँगी और वह दोनों को एक-एक चॉकलेट देगा। फिर माँ को दवाई देगा। माँ खाना बनाएगी और कितने दिनों बाद सब भर पेट खाना खाएँगे।

कालू ने अपने बड़े होने की ज़िम्मेदारी पूरी की। यह सोचकर उसका सीना गर्व से भर गया। और उसके कदम तेज़ी से बढ़ने लगे घर की ओर! चक मक

चलता-फिरता मकान



क्या मज़ा हो अगर चलता फिरता घर हो। कभी बगीचे के पास रहने लगे तो कभी झील के पास। डेनमार्क के कुछ कलाकारों ने अमरीकी वैज्ञानिकों के साथ एक ऐसे ही मकान बनाया है। इस मकान की छह हाइड्रॉलिक टाँगें हैं। इससे वह इधर-उधर घूम सकता है। 10 फुट ऊँचा यह मकान सौर और पवन ऊर्जा से चलता है। उसमें एक हॉल, किचन, टॉयलेट, बिस्तर और स्टोव हैं। साथ में एक कम्प्यूटर भी है जो पैरों पर नियंत्रण रखता है। मकान का यह मॉडल बनाने में कुल 24 लाख रुपए खर्च हुए हैं।

–प्रस्तुतिः रेक्स डी रोज़ारियो



चित्रः बसन्त भार्गव

कई पेड़ थे

कई पेड़ थे
उस वन में।

हर पेड़ पर
एक पक्षी था।

हर पक्षी गाता था
जैसे
किसी अन्य पक्षी से
बिछुड़
गया था।

– रुस्तम

दिलीप चिंचालकर

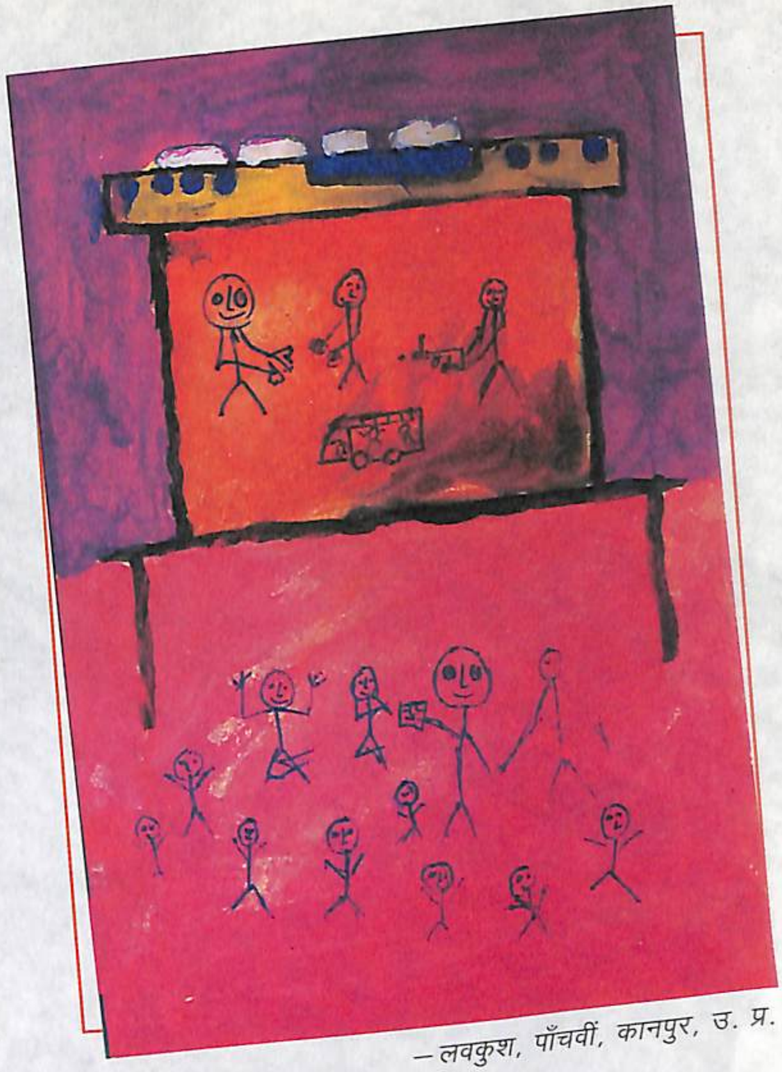
पकड़ में आती हैं आकृतियाँ खूब स्कैचिंग करने से

अभ्यास से यानी किसी चीज़ को बार-बार करने से उसमें निखार आता जाता है। जैसे अभिनव बिन्द्रा का सौ में से सौ निशाने सही साधना, नसीरुद्दीन शाह का बिना हकलाए मंच पर अभिनय करना या हुसैन का बगैर मिटाए एक ही बार में आकृति बनाना। बड़े स्कूलों और फाइन आर्ट कॉलेजों में छात्रों को हर महीने-पन्द्रह दिनों में सौ पन्नों की एक भरी हुई स्कैच बुक अपने शिक्षक के पास जमा करनी पड़ती है। उसे भरने के लिए छात्र हर खाली समय में स्कैचिंग करते रहते हैं। चाय के प्याले पर बैठकर हाथ मलती मक्खी से लेकर मेले-ठेले तक की। इसमें साइकिल, कुत्ता, बकरी, देहाती-शहरी सब आ जाते हैं। जिसने अपने शुरुआती दिनों में यह मशक्कत कर ली उसे बाद में किसी भी तरह की आकृतियाँ बनाने में दिक्कत नहीं होती।

स्कैचिंग से एक तो बिना हाथ काँपे गोल-सीधी, आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींचना आ जाता है। और दूसरे, वस्तुओं से हमारी जान-पहचान बढ़ती है। ठीक वैसे ही जैसे किसी दोस्त के साथ लम्बा समय गुज़ारने के बाद उसके स्वभाव की अच्छी जानकारी हो जाती है। तुम बता सकते हो कि वह किस परिस्थिति में कैसी हरकत करेगा। किसी वस्तु को चारों ओर से कई बार देखने और बनाने से हम अच्छी तरह समझ सकते हैं कि दूसरी वस्तुएँ आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ और ऊपर-नीचे से कैसी दिखती होंगी। याद करके हम उनके वैसे ही चित्र बना भी सकते हैं।

एक कुर्सी को सामने से देखने पर उसके अगले पैर और पीठ टिकाने का फट्टा या गद्दा दिखाई देता है। सोचो, कुर्सी को पीछे से देखने पर क्या दिखाई देगा? पीछे के पैर और गद्दे का पिछला हिस्सा। बाजू से देखने पर सबका थोड़ा-थोड़ा हिस्सा। कुछ-कुछ ऐसा ही बैठी हुई गाय के साथ भी होगा। सामने से उसकी थूथन, आँखें, कान, सींग, पैर और शरीर दिखाई देंगे तो पीछे से कान, सींग, शरीर, पीठ का उभार और दुम दिखाई देंगे और पैरों का इशारा भर होगा। यही बात मनुष्य के चित्रों में भी होगी।

कक्षा में रोज़ साथ बैठने वाले सहपाठियों को तुम चेहरे से तो जानते ही हो। वे पीछे से और बाजू से कैसे दिखते हैं यह



— लवकुश, पाँचवीं, कानपुर, उ. प्र.

भी रोज़ ही देखते हो। नहीं याद आता है तो अब देखो। कान या सिर, खास तौर पर गर्दन और पिछले हिस्से के बाल कैसे दिखाई देते हैं? आँखें बाजू से कैसी नज़र आती हैं? स्कैच बनाने से ये बातें तुम्हारे ज़ेहन में पक्की बैठ जाएँगी। फिर नाश्ते की टेबल के चारों ओर बैठे दोस्तों का चित्र बनाने में परेशानी नहीं होगी। हाँ, अगर तुम्हें बनाना है कि पैरों के पास बैठे टॉमी को घास में पसरे हुए बंटू भैया कैसे दिखाई देते होंगे तो अपनी कल्पना के घोड़े को तेज़ दौड़ाना पड़ेगा।

अब एक स्कैचबुक ले लो। हर रोज़ उसमें सामने दिखाई देने वाली चीज़ों के दो-दो, चार-चार मिनट के स्कैच बनाओ। जब इसका अच्छा अभ्यास हो जाए तो फिर किसी वस्तु को सामने से देखकर उसके पीछे का हिस्सा बनाने की कोशिश करो।

अट्टा बट्टा खट्टा
बिल्ली का झपट्टा
बिल्ली के दाँत टूटे
सारे चूहे छूटे



अन्तरिक्ष में घूमती हबल दूरबीन

चक्रेश जैन

लगभग 18 सालों से अन्तरिक्ष में एक दूरबीन घूम रही है। इन सालों में उसने सुदूर अन्तरिक्ष के लगभग एक लाख चित्र भेजे हैं। इन चित्रों से हमें ब्रह्माण्ड के बनने, जन्म-मरण के जाल में फँसे तारों, आकाशगंगाओं और गैस के विशाल बादलों के बारे में नई-नई जानकारियाँ मिली हैं। लेकिन अब इस दूरबीन का जीवनकाल (20 साल) खत्म होने को है।

हबल क्या है?

24 अप्रैल 1990 का दिन अन्तरिक्ष विज्ञान के इतिहास का एक खास दिन है। इस दिन हबल को नासा के स्पेस शटल डिस्कवरी से अन्तरिक्ष में स्थापित किया गया था। हबल पृथ्वी की सतह से करीब 600 किमी की ऊँचाई पर है। अन्तरिक्ष में घूमती यह दूरबीन हर 97वें मिनट में पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी कर रही है। हबल से ब्रह्माण्ड के बारे में हमें बहुत कुछ पता चला है। इससे खगोल विज्ञान में कई अनुसंधान हो पाए हैं।

हबल यूरोपीय अन्तरिक्ष एजेंसी "ईएसए" तथा अमरीकी अन्तरिक्ष एजेंसी नासा का साझा कार्यक्रम है। अमरीकी खगोलशास्त्री एडविन पी. हबल के नाम पर इस दूरबीन का नामकरण किया गया है।

शेष भाग पृष्ठ 30 पर

पिछले 18 सालों में हबल द्वारा लिए फोटो में से खगोलशास्त्रियों ने 10 सबसे आश्चर्यजनक फोटो चुने हैं। ये हैं:

1 सॉम्ब्रोबो गैलक्सी पृथ्वी से 2 करोड़ 80 लाख प्रकाश वर्ष दूर है। इसमें 800 अरब सूर्य हैं।

2 एन्ट नैब्युला धूल और गैसों का गुबार है। चींटी जैसा दिखने के कारण इसे यह नाम मिला। (पृथ्वी से दूरी: 3000 से 6000 प्रकाश वर्ष*)

3 चेहरे पर फरदार टोप जैसा दिखने के कारण ही शायद इसे यह नाम मिला - एस्कीमो नैब्युला। (पृथ्वी से दूरी: 5000 प्रकाश वर्ष)

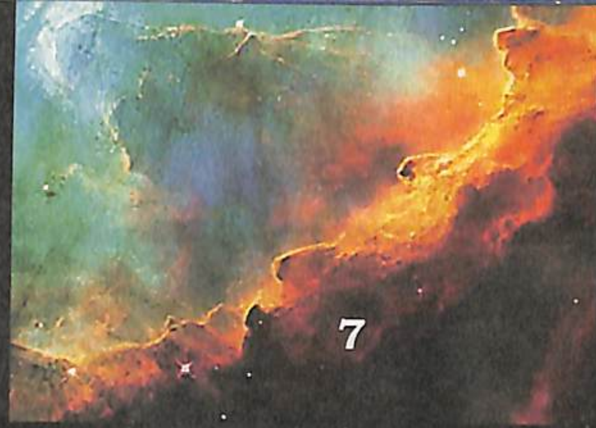
4 कैट्स आई नैब्युला।

5 पृथ्वी से 8000 प्रकाश वर्ष दूर यह आरग्लास नैब्युला ऐसा लगता है मानो किसी ने बीच में च्यूँटी काट रखी हो।

6 यहाँ कोन नैब्यूला का एक हिस्सा दिख रहा है। इस हिस्से की लम्बाई 2.5 प्रकाश वर्ष है। यानी इसकी लम्बाई













है पृथ्वी से चाँद तक दो करोड़ 30 लाख बार आने-जाने में तय की गई दूरी।

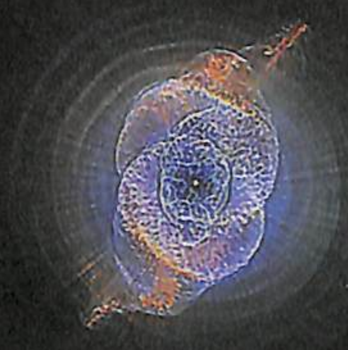
7 5500 प्रकाश वर्ष दूर के स्वॉन नैब्यूला का एक हिस्सा। हाइड्रोजन, थोड़ी-सी ऑक्सीजन, सल्फर और दूसरे तत्वों का तूफान।

8 आकाशगंगा में एक तारे के आसपास प्रकाश का प्रभामण्डल।

9 कैनिस तारामण्ड में दो गैलेक्सियों के घूमते केन्द्रक पास-पास आ रहे हैं। (पृथ्वी से दूरीः 11 करोड़ 40 लाख प्रकाश वर्ष)

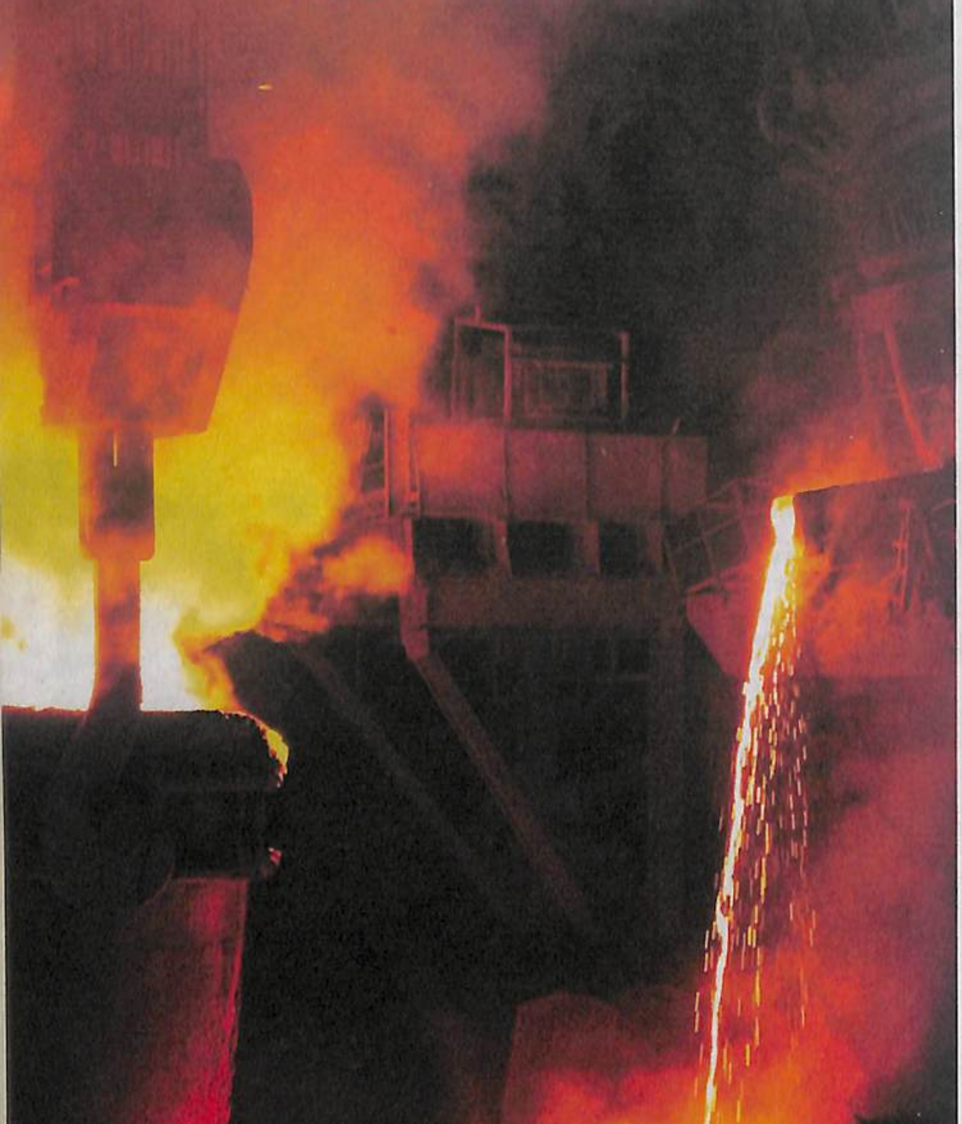
10 ट्रिफिड नैब्यूला वो नर्सरी है जहाँ तारे जन्म ले रहे हैं। (पृथ्वी से दूरीः 9 हज़ार प्रकाश वर्ष)

** प्रकाश वर्ष यानी एक साल में प्रकाश द्वारा तय की गई दूरी। एक प्रकाश वर्ष लगभग 9500000000000 किलोमीटर होता है।*



सतीनाथ षडंगी

अनारको उसका छल्ला और लोहे का कारखाना



अनारको को इतना याद है कि उसकी नींद टूट गई थी। और उसका हाथ लोहे के छल्ले पर पड़ा था। यह छल्ला पिछली शाम ही तो सड़क पर पड़ा मिला था। जब वो स्कूल से आ रही थी तब। छल्ला थोड़ा गन्दा-सा था। पर उससे क्या होता है? अनारको ने उसे उठाकर अपनी कमीज़ की जेब में रख लिया। छल्ला जेब से निकलकर बिस्तर पर आ गया होगा।

अनारको ने छुआ तो उसे अच्छा लगा। मीठी-मीठी ठण्डी-ठण्डी उसकी छुअन। बीच में बने छेद से हथेली का थोड़ा हिस्सा बिस्तर को छूता था तो गुदगुदी-सी लगती थी वहाँ।

अनारको इस छुअन में मशगूल ही थी कि छल्ला खड़ा होकर लुढ़कने लगा। बिस्तर से छलाँग मारकर फर्श पर आ गया। फिर लुढ़कते हुए पिछवाड़े के दरवाज़े की तरफ गया। अनारको को पहले तो यह सब कुछ अजीब लगा फिर वह भी छल्ले के पीछे हो ली। दरवाज़े के पास खिड़की से आती चाँदनी में जैसे कि एक बड़ी मुस्कान हो। अनारको ने दरवाज़ा खोला फिर छल्ले के पीछे-पीछे हो ली।

सेमल के एक पेड़ के नीचे से जाते हुए छल्ले के सिर में उड़ती हुई रुई फँस गई। इससे उसकी चाल डगमगा गई। चलते हुए अनारको



ने सोचा कि छल्ले का चलना भी कितना अजीब है। कभी सिर पैर हो जाता है और अगले ही पल पैर सिर हो जाता है। और ऐसे ही सिर-पैर पैर-सर करता हुआ लुढ़कता-डगमगाता हुआ चलता है छल्ला। खैर, उसने छल्ले के सिर या अब पैर से रुई छुड़ाई और फूँककर उस रुई को उड़ा दिया।

तेज़-तेज़ लुढ़कते हुए छल्ला एक ऊँची दीवार के पास आ गया। दीवार के उस पार क्या था बता नहीं सकते थे। पर दीवारों के ऊपर बन्दूक थामे संतरी ज़रूर दिखते थे। लोहे के बड़े दरवाज़े के ऊपर लिखा था "लोहे का कारखाना"। दरवाज़े से न जाकर छल्ला दीवार के नीचे बने छेद से अन्दर दाखिल हुआ। पीछे-पीछे अनारको।

दोनों एक ऊँची छत वाले बड़े-से मकान में पहुँच गए। ऊपर की छत टीन की चादरों की बनी थी। और अन्दर बहुत शोर मच रहा था। धम्म-धम्म की आवाज़ यूँ आती थी जैसे कोई डायनासौर तेज़-तेज़ भाग रहा हो। चारों तरफ बहुत सारे लोग खूब सारा हल्ला मचा रहे थे।

इस सारे हल्ले के बीच अनारको ने देखा कि एक तरफ कुछ लोग चिमटे से लोहे की मोटी-मोटी चादरों को लोहे की लम्बी बेंच पर खींचकर एक मशीन के नीचे ला रहे थे। बेंच के ऊपर पहिए लगे थे। फिर भी चादर को खींचने में काफी ताकत लगाना पड़ती थी। एक के पीछे एक लोग चादरों को लाते जाते और उस बड़ी-सी मशीन के मुँह में डालते जाते। अनारको और पास गई तो उसे चादरों की गर्मी का अहसास हुआ। सो वो ज़रा पीछे हट गई। अनारको ने देखा चादरें जिस मशीन के अन्दर जातीं वहाँ बटन दबाते ही ऊपर से चमकती हुई छड़ें निकलतीं। और चादर को दबाते हुए नीचे निकल जाती थीं। फिर क्या पूरी चादर में गोल-गोल छेद हो जाते। और उस मशीन के नीचे से छल्ले ही छल्ले निकलते थे। फिर कुछ लोग उस छेद वाली चादर को हटाकर अलग कर देते थे। और कुछ छल्लों को एक तरफ इकट्ठा करते जाते थे। ऐसा ही चलता रहता था। बार-बार, लगातार।

अनारको यह सब देख ही रही थी कि उसे छल्ले का ख्याल आया। इधर-उधर देखा तो पाया कि दूर कोने में छल्ला खूब सारे नए छल्लों के साथ बतिया रहा था। अनारको समझ गई कि वह उन्हें बाहर की दुनिया के बारे में बता रहा था। अनारको को भी बात करनी थी। क्योंकि उसकी सोच में काँटा लग गया था। उसने वहाँ काम कर रहे एक आदमी से पूछा, "क्यों आप सुबह से शाम तक एक ही काम बार-बार कर के थक नहीं जाते हो?" "जब हिन्दी के मासाब मुझे बोर्ड पर पचास बार 'आगे से क्लास में नहीं हँसूँगी' लिखने को कहते हैं तो दस बार लिखने के बाद ही मैं थक जाती हूँ।" "थक तो जाती हो," उस आदमी ने कहा, "पर लिखती तो पूरे पचास बार ही हो ना?"

अनारको कुछ आगे बोलती या पूछती तभी छल्ला लुढ़कने लगा। अनारको इसके पीछे भाग चली। अब वे वहाँ पहुँचे जहाँ वैसा ही टीन की छत वाला ऊँचा मकान था। छल्ला जिस तरह



कभी इधर कभी उधर जा रहा था, कोई भी समझ लेता कि वह यहाँ कभी नहीं आया था। यहाँ भी खूब हो-हल्ला था। और अनारको ने इसी हो-हल्ले के बीच पूरे कारखाने का जायज़ा ले लिया। अनारको न देखा इस कारखाने में सब कुछ वैसा ही हो रहा था जैसे अम्मी रोटी बेलती है, पर सब कुछ बड़े पैमाने पर।

एक तरफ लाल गर्म – पहाड़ के पीछे के सूरज जैसा लाल गर्म – लोहे के खम्बे छोटी-छोटी गाड़ियों पर लगी एक भारी मशीन में जाते थे। मशीन में रोटी के बेलन जैसे ऊपर-नीचे लोहे के बेलन घूमते जाते थे। एक तरफ से लाल गर्म खम्बे जाते दूसरी तरफ से लोहे की पतली चादरें निकलती थीं। और सब कुछ खूब धुआँ, भाप, गर्मी और शोर के बीच होता जाता था। बार-बार एक के बाद एक लगातार।

मशीनों के साथ-साथ वहाँ भी बहुत सारे लोग थे। कुछ हट्टे-कट्टे कुछ दुबले-पतले। और सबके सब पसीने से तरबतर। अनारको ने सोचा ऐसे ही पसीना बहते-बहते कोई आदमी पूरा का पूरा पसीना बन जाए। और बस इत्ता-सा पसीना रह जाए। और पसीने में उस आदमी की बू रह जाए।

अनारको ने देखा लोग गर्म खम्बों की गाड़ियाँ धकेल रहे थे। कई मशीन चला रहे थे। कई कुछ मरम्मत का काम कर रहे थे। पसीने में भीगे हाथ ज़ोर लगाते हाथ समन्दर की लहरों जैसे उठते गिरते हाथ।

तभी उसके कँधे पर मम्मी का हाथ पड़ा। अनारको जाग गई। आँख खोली तो देखा तकिया के दूसरे सिरे पर बिल्कुल तकिए से सटकर छल्ला पड़ा था। उसने हाथ बढ़ाकर छल्ले को छुआ। उसे महसूस हुआ जैसे वह हज़ारों हाथों को छू रही हो। उसका मन इतना मस्त हो गया कि उसने अम्मी से पाँच मिनट और सोने वाली लड़ाई भी नहीं लड़ी। चक मक

एक कहानी, बोदा रानी
गल्ला चोर, खींचे डोर
बाजे पुंगी, नाचे मोर

प्रस्तुति - मनोज साहू



आमोद कारखानिस

मामला आवाज़ें निकालने का

मैं एक नाटक देख रहा था। बगीचे का सीन था। बगीचे का दृश्य बनाने के लिए पीछे एक पर्दा लगा था और सामने बहुत सारे गमले थे। दृश्य को और वास्तविक बनाने के लिए पीछे से चिड़ियों का चहचहाना सुनाई दे रहा था। सोचने लगा, यह बगीचाना माहौल बनाने में कितनी मेहनत की होगी। शहर के बगीचों में चिड़ियों की इतनी स्पष्ट आवाज़ रिकॉर्ड करना कोई आसान काम नहीं है!

तारीफ किए बगैर मुझसे रहा न गया। जब मैंने अपने दोस्त को यह किस्सा सुनाया तो वो ज़ोर से हँसा और बोला, "तुम देखना (सुनना?) चाहते हो पक्षियों का चहचहाना? अन्दर आ जाओ।" अन्दर घुसा। कोई पक्षी नहीं, टेप रिकॉर्डर भी नहीं। बस एक साहब दूध की खाली बोतल और कॉर्क लिए बैठे थे। हमें देखते ही वे एक के बाद एक पक्षियों की आवाज़ें निकालने लगे।

तुम भी कोशिश करो

कांच की एक बोतल लो। उसके मुँह के पास चूड़ियाँ नहीं होनी चाहिए। बोतल के मुँह को हलका-सा गीला करो और उसपर कॉर्क रगड़ो। कभी ज़्यादा तो कभी कम दबाव से रगड़ने पर अलग-अलग आवाज़ें निकाली जा सकती हैं। थोड़ी प्रैक्टिस से तुम कई तरह की आवाज़ें निकाल पाओगे।

आवाज़ें निकालने का मामला यहीं खत्म नहीं होता!

फिल्मों में जो दिखता है अगर उतनी ज़ोर से लोग पिटते रहते तो यकीन मानो उनकी आधी ज़िन्दगी अस्पताल में ही कटती। पर यह ज़ोरदार एक्शन के साथ ज़ोरदार आवाज़ का ही कमाल है कि घूँसा ज़ोरदार लगने लगता है। सोचो, इसके लिए क्या किया जाता होगा? एक्शन सीन में सबकुछ इतना जल्दी होता है कि हम कहाँ जान पाते हैं कि घूँसा लगा कहाँ और आवाज़ कहाँ से आई। गरम पानी से सिकाई करने वाले बैग पर माइक्रोफोन के सामने घूँसे जड़ो और असर देखो। माइक्रोफोन भी क्या कमाल की चीज़ है। तिल-सी आवाज़ को ताड़ बना देता है। इसके सामने माचिस की डिब्बी को मुट्ठी में मसलो तो ऐसी आवाज़ आएगी ज़्यों पूरा-का पूरा सेट ही धराशायी हो गया हो।

तेज़ हवा में झूमते पत्तों की आवाज़ के लिए न हवा चाहिए न पेड़। बस, पन्नी के बैग को माइक्रोफोन के सामने ज़ोर से एक से दूसरी तरफ ले जाओ।

क्या हुआ? बारिश के मौसम का सीन है? कोई बात नहीं।

ज़रा इसे आज़माकर देखो

दूध की बोतल या कांच की कोई भी 500 मि.ली. की छोटे मुँह वाली बोतल लो। उसके मुँह के पास फूँक मारो। साँय-साँय की आवाज़ें आएँगी। बोतल में पानी डालते जाओ और अलग-अलग आवाज़ें सुनते जाओ। पानी का स्तर बदलने के साथ-साथ क्या आवाज़ें भी बदलती जाएँगी?

उस्ताद तबले पर कई आवाज़ें निकाल सकता है। बादलों की गड़गड़ाहट सुनाना उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं। पर



दोनों चित्रः दिलीप चिंचालकर

अगर हमारी ऊँगलियाँ तबले पर थिरकने की आदी ना हों तो? इसका पुख्ता इन्तज़ाम था पुराने थिएटरों में। वहाँ लकड़ी का खुरदरी सतह वाला बड़ा भारी ढलावदार पटिया होता था। उस पर से लुढ़कती धातु की भारी गेंद बादलों सरीखी ही गड़गड़ाहट पैदा करती है। धातु की ट्रे पर हाथ से चपत मारने पर निकली आवाज़ बादलों में बिजली चमकाने का काम करेगी।

अगर नाटक ऐतिहासिक युद्ध पर है तो तोपों की आवाज़ तो चाहिए ही होगी। है ना! तो क्या 26 जनवरी की परेड की तोपों की आवाज़ों को रिकॉर्ड करने तक रुकोगे? नहीं भाई, किसी खाली कचरे के डिब्बे में छूटा पटाखा भी तोप का काम कर सकता है।

हवा में पिस्तौल को लहराते हुए गोली दागनी है.... चिन्ता की क्या बात! चमड़े के तकिए को बाँस की छड़ी से पीटो क्या उम्दा आवाज़ आएगी! ऐतिहासिक नाटक से एक मज़ेदार चीज़ याद आई।

ज़रा इसे भी आज़माओ

प्लास्टिक के दो कपों को एक-एक हाथ में पकड़ो और उनके खुले सिरे आपस में टकराओ। क्या घोड़े को सरपट दौड़ा पाए या धीरे-धीरे चला पाए?

ऐसी कई तरकीबें हैं जिनसे नाटक में रंग भरा जा सकता है। नाटकवालों की पोल नहीं खोलूँगा। पर कई तरकीबें तुम भी सोच सकते हो। मान लो तुम्हारे नाटक में एक भुतहा घर है। सिया बन्द दरवाज़े को खोलती है। सदियों से बन्द दरवाज़ा चरमरा कर खुलता है। बाहर सियारों, कुत्तों की आवाज़ें आ रही हैं...। इतने में किसी के भारी कदमों से सीढ़ियाँ चढ़ने की आवाज़ आती है...। ये आवाज़ें निकालने के लिए क्या करोगे?



टीचर: हमारे आसपास कितनी आवाज़ें हैं – बस की, तेज़ हवाओं की, पक्षियों की, हँसने की, रोने की...। हमें इन सब को सुनना चाहिए।

बच्ची: कभी तो कहती हैं कुछ मत सुनो। बस, मैं जो कह रही हूँ वही सुनो। और कभी...

चित्रः अतनु राय

पृष्ठ 5 का बाकी हिस्सा...

एक खूबसूरत पश्तुनेरिया के नाम

मकड़ियों की तरह जाले नहीं बनाती। इन मकड़ियों को "फ्लावर स्पाइडर्स" कहते हैं। ये शिकारगाह के रूप में प्रकृति के फन्दों (फूल) का ही उपयोग करती हैं। इन्हें थोमिसिडी कुल में रखा गया है। इनका एक नाम केकड़ा मकड़ी भी है क्योंकि ये केंकड़े की तरह दाएँ-बाएँ भी चलती हैं। उन्हीं की तरह ये शिकार को अपनी अगली भुजाओं से झपट्टा मारकर पकड़ती हैं। शिकार करने वाली अधिकांश मकड़ियाँ मादा होती हैं। इनके नर इनसे छोटे होते हैं।

अनोखी शिकारगाह

इस मकड़ी ने जिस शिकारगाह का उपयोग किया उसकी खूबसूरती पर भी ज़रा गौर फरमाइए। फूलों के हर झुमके में आठ-दस कलियाँ और फूल होते हैं। फूल के डण्ठल दो-तीन सें.मी. लम्बे होते हैं जिनके सिरे पर फूल खिलते हैं। सभी झुमकों में दो-तीन फूल खिलते हैं हर रोज़।

लगभग एक सें.मी. का फूल गज़ब का सुन्दर होता है। पाँच पंखुड़ियाँ बाहर से हल्की जामुनी होती हैं। इनके किनारे पर बड़े-बड़े सफेद रोएँ होते हैं। कलियाँ छोटे-छोटे हरे घुँघरुओं जैसी लटकी हुई होती हैं।

फूल को बारीकी से देखने पर इसके केन्द्र में ऊपर की ओर उठा गुम्बद के आकार का करोना नज़र आता है। लगता है जैसे पाँच सफेद नन्ही चिड़ियाँ दाना चुगने की मुद्रा में फूल के बीच में बनी एक हरी थाली पर अपनी चोंच सटाए बैठी हैं।



यह हरी थाली दरअसल फूल के मादा भाग का ही एक हिस्सा है। कुल मिलाकर झालरदार पंखुड़ियाँ और चमकदार, गठीला करोना इस फूल को बेमिसाल खूबसूरती देता है। इसीलिए मुझ जैसा प्रकृति प्रेमी बार-बार इसके पास जाने को मजबूर हो जाता है। इससे प्रकृति की हरकतों, उसके मिजाज़ को समझने का मौका भी मिलता है। तुम भी देखना तुम्हारे आसपास इन खूबसूरत शिकारगाहों पर कोई शिकारी तो नहीं बैठा किसी नए शिकार की तलाश में... चकमक

कंडक्टर - तुम्हें पता है न बिना टिकिट बस में बैठना जुर्म है।
यात्री - पता है। इसलिए तो खड़ा हूँ।





माथा पच्ची

4 के अंक को आठ बार इस तरह लिखो कि उनका कुल जोड़ 500 हो?

एक किसान के पास कुल 12 गाएँ थी। इन गायों की यह खासियत थी कि पहली गाय 1 सेर, दूसरी गाय 2 सेर और इसी तरह बारहवीं गाय 12 सेर दूध देती थी। किसान इन गायों को अपने तीन दोस्तों में इस तरह बाँटना चाहता था कि हर एक के हिस्से में बराबर दूध आए। क्या तुम किसान की कुछ मदद करोगे?

एक परिवार में 10 सदस्य हैं – 3 पिता, 3 बेटे, 3 बेटियाँ, 2 सासें, 2 ससुर, 1 बहु, 1 जमाई, 2 भाई और 2 बहनें। भला यह कैसे हो सकता है?



अमिताश ओझा

अर्थ का अर्थ

जब से दुनिया बनी है शायद तभी से सवाल किए जा रहे हैं। उनके जवाब भी दिए गए हैं। कितनी ही बार जवाब पूरी तरह से सन्तुष्ट नहीं करते या फिर अधूरे-से लगते हैं। ऐसा लगता है तो यह बिल्कुल सही है ...क्योंकि एक दार्शनिक का काम ही सवाल पर सवाल पूछना है।

जैसे एक सवाल है कि शब्दों में अर्थ कहाँ छुपे रहते हैं...

शब्दों में कहाँ छुपे रहते हैं अर्थ

तुम्हारे मन में यह सवाल ज़रूर आया होगा कि आखिर शब्दों के अर्थ कैसे आते हैं? एक ही शब्द के कई अर्थ कैसे हो सकते हैं? और सबसे बड़ी बात यह कि क्या होता है जब हम किसी शब्द का अर्थ समझ जाते हैं और क्या होता है जब हम किसी शब्द का अर्थ नहीं समझ पाते हैं? ...मतलब यह कि आखिर अर्थ हैं क्या?

चलो एक उदहारण से इन सवालों को समझते हैं। मान लो तुमने अपने दोस्त से सवाल किया कि उसका नाम क्या है? और उसने अपना नाम बता दिया। बात कितनी सीधी है - तुमने नाम पूछा और उसने बता दिया। इसमें सोचने वाली क्या बात है? लेकिन अगर तुमने यही वाक्य किसी दूसरी भाषा में पूछा होता तो वह जवाब नहीं दे पाता। तुम कहोगे बिल्कुल सही। शायद उसे वो भाषा नहीं आती होगी। सही है पर सवाल भी तो यही है.... कि भाषा आने का क्या मतलब होता है? आखिर उसके दिमाग में क्या हुआ होगा कि पहली बार तो उसने तुम्हारे शब्दों का अर्थ समझा .... पर दूसरी भाषा में पूछे गए सवाल को समझा ही नहीं ...।

एक ही चीज़ को अलग-अलग भाषा में अलग-अलग तरह से कहा जाता है। जैसे - हिन्दी में पानी, अँग्रेज़ी में वॉटर, तेलुगु में नीलू, मलयालम में वेल्लम वगैरह-वगैरह। आखिर एक ही वस्तु के लिए कई सारे शब्द कैसे हो सकते हैं?

एक और सवाल ... जब हम गाय लिखते हैं और किसी को दिखाते हैं तो वह फौरन समझ जाता है। लेकिन सोचिए गाय शब्द तो गाय जैसा बिल्कुल नहीं दिखता। फिर भी हम कैसे समझ जाते हैं कि हम किस वस्तु के बारे में बात कर रहे हैं। यह सवाल लिखित भाषा से सम्बन्धित है।

बड़ा सवाल यह है कि क्या "गाय" शब्द में ही गाय का अर्थ छुपा हुआ है या कहीं और। कई लोगों का मानना है कि "गाय" शब्द में ही गाय का अर्थ छुपा हुआ है। उनका कहना है कि यदि हम "गाय" शब्द देखते हैं तो हमारे मस्तिष्क में गाय का एक चित्र बन जाता है। इससे हम समझ जाते हैं कि यह गाय है। मस्तिष्क में गाय का चित्र सिर्फ "गाय" शब्द को देख कर ही बनता है। यदि हम "बिल्ली" शब्द देखें तो मस्तिष्क में बिल्ली का चित्र बनेगा न कि गाय का। न जाने कितने दार्शनिक इस बात को मानते हैं। उनका तो यहाँ तक कहना है कि दुनिया की सारी वस्तुओं के नाम पहले से ही तय किए जा चुके हैं और उन्हें भगवान ने नाम दिए हैं। यानी सारे शब्द भगवान ने पहले से ही बना दिए हैं।

इस के विपरीत कई दार्शनिक मानते हैं कि शब्दों के अर्थ होते ही नहीं हैं। बल्कि हम उन्हें कैसे प्रयोग करते हैं इसपर उनके अर्थ निर्भर करते हैं। उनका मानना है कि यदि शब्दों के अर्थ शब्दों में ही छिपे होते तो हम सिर्फ शब्दों को देखते और उनका अर्थ समझ जाते। भाषा को जानने या न जानने का सवाल ही नहीं उठता। लेकिन ऐसा होता नहीं है। उनका यह भी मानना है कि शब्दों के अर्थ हमारे मस्तिष्क की उपज हैं यानी दुनिया में किसी वस्तु का कोई नाम है ही नहीं .... हम उन्हें अपनी सुविधानुसार नाम देते हैं।

चलिए एक और उदहारण देखते हैं

कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय
ये खाए बौराए नर ये पाए बौराए

इस दोहे का अर्थ यह है कि कनक (धतूरा) कनक (सोना) से कई गुना ज़्यादा नशा देने वाला है। एक को खाने से नशा आता है और दूसरे को पाने से। यहाँ कनक के दो अर्थ हैं – एक का मतलब है "धतूरा" और दूसरे का अर्थ है "सोना" (धातु)। ज़रा सोचो कि हमें कैसे पता चला कि कनक के यहाँ दो अर्थ हैं। तुम कहोगे कि दोहा पढ़कर उनका अर्थ पता चलता है। इसका मतलब यह हुआ कि कनक शब्द का अपना कोई अर्थ नहीं है। दूसरे शब्दों पर ही इसका अर्थ निर्भर करता है। यहाँ तो सवाल एक ही भाषा का है। यदि एक ही भाषा में एक ही शब्द के कई अर्थ हों तो हमें कैसे पता चलता है कि किस अर्थ के बारे में बात की जा रही है। यदि हम भाषा के अन्दर जाएँ तो पता चलेगा कि इसमें न जाने और कितने रहस्य छुपे हुए हैं। उदाहरण के लिए अफ्रीका की एक आदिवासी भाषा में रंगों के लिए शब्द ही नहीं हैं पर आश्चर्य ये कि वे रंगों के बारे में बात कर लेते हैं। इसी तरह कुछ ठण्डे प्रदेशों में बर्फ के लिए पचास से ज़्यादा शब्द हैं। दक्षिण अमरीका के एक आदिवासी समुदाय की भाषा में समय बिताने के लिए कोई शब्द नहीं है। मतलब यह कि उनकी भाषा में कल, परसों जैसे शब्द हैं ही नहीं।

ऐसी ही न जाने कितनी और बातें हैं जो भाषा के बारे में की जा सकती हैं। यह तो एक झलक भर है।

चित्रः अतनु राय

नवम्बर माह की चित्र पहेली का हल

झो	प	ड़ी			च	र	वा	हा
	त्त		मु	खौ	टा			ट
बा	ल	क	नी		ई	ख		
दा			म	ग		त	स्वी	र
म	चा	न			पा	रा		सो
	बु				जा		सु	ई
आ	क		ता	प	मा	पी		
इ		के	ला			प	पी	हा
ना	वि	क		कं	का	ल		थी

ठण्ड से काँपता हुआ, दस साल का एक छोटा-सा लड़का। नंगे पैर वो जूतों की दुकान के बाहर खड़ा टकटकी बाँधे अन्दर झाँक रहा था।

एक औरत उसके पास आई और बोली, "तुम इतने ध्यान से क्या देख रहे हो?"

"मैं भगवान से अपने लिए एक जोड़ी जूते माँग रहा हूँ।", लड़का बोला।

वो औरत उसे हाथ पकड़कर दुकान के अन्दर ले गई। दुकानदार से उसने आधे दर्जन मोज़े लाने को कहा। फिर उसने दुकानदार से पूछा कि क्या उसे थोड़ा-सा गरम पानी और तौलिया मिल सकता है? दुकानदार ने तुरन्त ही पानी व तौलिया लाकर दे दिया।

वो औरत लड़के को दुकान के पीछे ले गई। वहाँ उसने अच्छी तरह से उसके पैर धोए, साफ किए और तौलिए से उन्हें पोंछा।

तब तक दुकानदार मोज़े लेकर आ गया था। औरत ने लड़के को मोज़े पहनाए और एक जोड़ी जूते भी खरीदकर दिए।

बाकी के मोज़े उसे दे दिए। फिर उसके सिर पर हाथ फेरते हुई बोली, "अब तुम्हें पहले से बेहतर लग रहा होगा ना!"

जैस ही वह जाने के लिए मुड़ी, लड़के ने उसका हाथ पकड़ लिया। आँसू भरी आँखों से उसकी ओर देखा और बोला, "क्या तुम भगवान की पत्नी हो?"

तुम कौन हो

प्रस्तुतिः अरविन्द गुप्ता



पृष्ठ 20 का बाकी हिस्सा...

अन्तरिक्ष में घूमती हबल दूरबीन

हबल से पता चला कि...

कुछ प्रश्न हमारे दिमाग में उठते ही रहते हैं। जैसे – अन्तरिक्ष कैसा है? वहाँ से धरती कैसी नज़र आती है? हमें इन दिलचस्प सवालों का जवाब हबल से भेजी गई तस्वीरों के अध्ययन और विश्लेषण से मिला है। इसके अलावा हबल से विभिन्न आकाशगंगाओं और मंगल के मौसम का हाल समझने में भी मदद मिली है। हबल नामके वैज्ञानिक ने पता लगाया था कि ब्रह्माण्ड महाविस्फोट के बाद लगातार फैलता जा रहा है।

क्या हुआ हबल को?

हबल दूरबीन की तुलना विज्ञान की फंतासी फिल्मों की टाइम मशीन से की जा सकती है। भीमकाय, शक्तिशाली तथा अत्याधुनिक हबल दूरबीन का जीवनकाल बीच-बीच में बिगड़ती सेहत के कारण अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों को परेशानियों में डालता रहा है। नौबत यहाँ तक आ गई कि नासा ने आर्थिक संकट के कारण इस दशक के अन्त तक विज्ञान की इस महँगी परियोजना को खत्म करने का स्पष्ट संकेत दे दिया। लेकिन इसे इतना ज़्यादा उपयोगी पाए जाने के कारण कई खगोलविद् इसकी मरम्मत के एक कार्यक्रम को मंजूरी दिलाने में सफल हुए हैं।

हबल का इलाज

अन्तरिक्ष बजट में कटौती के कारण नासा को अपनी कई परियोजनाओं में कटौती करनी पड़ीं। हबल पर भी इसकी मार पड़ी। हबल की मरम्मत पर अब तक बहुत सारा पैसा लग चुका है। लेकिन मरम्मत मिशन को मंज़ूरी मिलने के बाद मई 2009 को नासा के चुने हुए वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की एक टीम अन्तरिक्ष यात्रा के लिए निकलेगी। वहाँ वे इस दूरबीन की ठोका-पीटी और मरम्मत करेंगे। इस कार्यक्रम को सर्विस मिशन-4 (एस.एम.– 4) नाम दिया गया है। इसके तीन मुख्य उद्देश्य हैं। पहला, उसके कामकाजी जीवनकाल में पाँच साल बढ़ाना। दूसरा, हबल की वैज्ञानिक क्षमताएँ बढ़ाना और तीसरा उन उपकरणों की मरम्मत जिन्होंने काम करना बन्द कर दिया है। साथ ही कुछ नए उपकरण भी लगाए जाएँगे। इस इलाज के बाद हबल दूरबीन की आँखों से ब्रह्मांड का विस्तृत अध्ययन सम्भव हो पाएगा।

हबल दूरबीन: रोचक तथ्य

प्रक्षेपण: 24 अप्रैल 1990

अन्तरिक्ष में स्थापित: 25 अप्रैल 1990

लम्बाई: 43.5 फुट

वज़न: 11110 कि. ग्राम

अधिकतम व्यास: 14 फुट

प्रक्षेपण लागत: 1.5 अरब डॉलर

जीवनकाल: 20 वर्ष

पहला चित्र भेजा: 20 मई 1990





एडविन पी. हबल

किसी के भी दिमाग में ये सवाल आ सकते हैं कि जब इतने सारे ग्रहों और आकाशीय पिण्डों की खोज ज़मीन पर रहते यहीं की दूरबीनों से हुई तो फिर ज़रूरत क्या थी अन्तरिक्ष में दूरबीन रखने की। इतना खर्च करने की। खुद एडविन हबल जिनके नाम पर इस दूरबीन का पड़ा ने ज़मीनी दूरबीनों से पता किया था कि हमारी आकाशगंगा के अलावा भी कई आकाशगंगाएँ अन्तरिक्ष में हैं।

यह सही है कि हमने सभी ग्रहों की खोज पृथ्वी की दूरबीनों से ही की है। और हम यहाँ पर इतनी बड़ी दूरबीनें बना सकते हैं कि अन्तरिक्ष की बहुत छोटी चीज़ें भी दिख जाएँ लेकिन एक समस्या है बीच में आने वाले वायुमण्डल की। इसकी वजह से तस्वीर धुँधली हो जाती है। तुमने वो कविता तो सुनी ही होगी- ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार। ट्विंकल यानी तारों के टिमटिमाने का कारण भी यही वायुमण्डल है। तारों से आता प्रकाश वायुमण्डल की अलग-अलग परतों से गुज़रने पर कई बार मुड़ता है। कुछ प्रकाश को तो वायुमण्डल सोख लेता है। ये सारी दिक्कतें हबल से ली तस्वीरों में नहीं आतीं। हबल वायुमण्डल से बाहर है इसलिए वहाँ से छोटी चीज़ें भी देखी जा सकती हैं। हालाँकि हबल का आकार छोटा है लेकिन वह पृथ्वी की बड़ी दूरबीनों से भी ज़्यादा शक्तिशाली है। दूसरा फायदा यह कि पृथ्वी की दूरबीनें एक जगह पर फिक्स्ड हैं इसलिए उनसे देखा जाने वाला क्षेत्र भी सीमित है। लेकिन हबल से आकाश के किसी भी कोने को देखा जा सकता है। तीसरा फायदा यह कि हम ज़मीनी दूरबीन का इस्तेमाल दिन में नहीं कर सकते हैं।

– नरेन्द्र भण्डारी

पृष्ठ 15 का बाकी हिस्सा...

गदर में गालिब

लगाकर किसी तरह से अपनी गुज़र-बसर करती थी। लेकिन जब घर ही नहीं रहे, बस्ती की बस्तियाँ जला दी गईं तो मेहरुन्निसा काम न मिलने से भूखी मरने लगी। आज उसके यहाँ मैंने दस रोटियाँ पहुँचाईं। दूसरी जो दस रोटियाँ बचीं, उससे मेरे दोनों बेटों और नौकरों का काम चला। मेरे हिस्से में डेढ़ रोटी आई। फिर भी तसल्ली थी कि मेरी रोटियों से मेहरुन्निसा और उसकी दो बेटियों की भूख तो बुझी। मेरा क्या। मेरी तो भूखा रहने की आदत ही हो गई है।

मेरा पड़ोसी हीरासिंह एक नौजवान है। वह मुझे हिम्मत बँधाता है। इस आधे वीरान और आधे आबाद शहर में शिवजी राम भी तो हैं जो मुझसे कहते हैं कि मुसीबत के ये दिन कभी-न-कभी तो खत्म होंगे। उनका लड़का बालमुकुन्द मुझे अपने पिता की तरह चाहता है। जब मैं बीमार पड़ा, बालमुकुन्द अँग्रेज़ सिपाहियों की नज़रों से बचते-बचाते एक हकीम को मेरे पास ले आया। हकीम की दवा से मेरी जान बची। मुझे ज़िन्दगी बालमुकुन्द की मदद से ही वापस मिली। दूर के दोस्तों में मेरठ के हरगोपाल "तुफ्ता" हैं। वे शायरी करते हैं। उन्होंने मुझे अपने घर मेरठ से नगद रुपया भेजा है। गेहूँ की कुछ बोरियाँ भी "तुफ्ता" के आदमी मेरे घर रख गए हैं। उन्होंने कहला भेजा है कि मैं फिक्र न करूँ। वे मेरी मदद हर किस्म से करते रहेंगे।

ये बातें, जिनका लिखना ज़रूरी नहीं था, सिर्फ इसलिए लिखीं कि इन लोगों की दरियादिली और हमदर्दी का शुक्रिया अदा हो जाए। रातों को चिराग नहीं जलते। दिन में चूल्हे नहीं सुलगते। जब अनाज ही नहीं है तो चूल्हे कहाँ से जलें? मकानों के मालिक मार डाले गए हैं। वे होते तो घरों में गल्ला, पानी आता। गालिब, जिसके इस शहर में हज़ारों दोस्त थे, इस तनहाई और अकेलेपन में सिर्फ अपनी कलम के सहारे ही ज़िन्दा बचा रह गया है। उसके सारे दोस्त एक-एक कर मार डाले गए। मेरी आत्मा में अब केवल दुख ही दुख है। मैं अपना बिस्तर और कपड़े बेच-बेच कर ज़िन्दगी गुज़ार रहा हूँ। दूसरे लोग जिस तरह से रोटियाँ खाते हैं, मैं कपड़े खा रहा हूँ। डरता हूँ कि जब सब कपड़े खा लूँगा, तो नंगा ही भूखा मर जाऊँगा।



गोविन्द शर्मा

नत्थू का बचना

बात हरियाणे की है। एक बड़े बरामदे की छत के नीचे बैठी बारात खाना खा रही थी। कचौरियाँ बाँटने वाला सबकी थाली में दो-दो कचौरियाँ रख रहा था। संयोग से वह नत्थू की थाली में कचौरियाँ रखना भूल गया। नत्थू को बुरा लगा। सबकी थाली में कचौरी पर मेरी थाली में नहीं।

उसने कचौरियाँ माँगना ठीक नहीं समझा। पर ज़ोर से बोला, "भूकम्प आ जाए। और बरामदे की छत्त नीचे आ गिरे।" दूसरे बारातियों ने उसे डाँटा। "अरे भाई, ऐसी बातें क्यों कर रहे हो?" पर वह नहीं माना। बार-बार एक ही बात कहता रहा। "भूकम्प आ जाए। छत्त गिर जाए।" उसकी बात सुनकर सुरजा को गुस्सा आ गया। बोला, "रै मूरख, जो छत्त नीचे आ गिरी तो हम सब तो दब ज्यांगे, पर तू के बच ज्यागा?"

नत्थू उससे भी ज़्यादा गुस्से में अपनी थाली की ओर इशारा करके बोला, "क्यूँ न बचूँगा? इब बी तो बच र्‌या हूँ।"

माथापच्ची

एक थैली में कुछ रुपए और कुछ चवन्नियाँ हैं। अगर रुपयों को चवन्नियों में और चवन्नियों को रुपए में बदल दे तो कुल राशि में 15 रुपयों की कमी हो जाती है। तुम्हें बताना है कि शुरुआत में थैली में कितने पैसे थे?

एक तालाब में कुछ कमल खिले हैं और उन पर कुछ भँवरें मँडरा रहे हैं। अगर हर कमल पर दो-दो भँवरे बैठें तो एक कमल बच जाएगा। और अगर एक ही भँवरा बारी-बारी से हर फूल पर बैठे तो एक भँवरा बच जाएगा। ज़रा बताओ तो तालाब में कितने फूल और कितने भँवरे हैं?

14 संगमरमर के टुकड़ों को तुम्हें 4 बक्सों में इस तरह रखना है कि दूसरे बक्से में तीसरे से दो टुकड़े ज़्यादा हों, तीसरे में चौथे बक्से से 1 टुकड़ा ज़्यादा हो और चौथे बक्से में पहले बक्से से दुगुने टुकड़े हों।

भारतरत्न

संजय पटेल

उन्होंने बचपन में ही ठान लिया था कि मुझे एक नामी गायक बनना है



पिछले दिनों गायक पंडित भीमसेन जोशी को भारत रत्न देने की घोषणा हुई। भारत रत्न हमारे देश का सबसे बड़ा नागरिक सम्मान है। इस मौके पर तुम्हें उनके जीवन व गायिकी के बारे में बताते हैं...

धारवाड़ से सफर की शुरुआत...

पंडित भीमसेन जोशी का जन्म 14 फरवरी 1922 में कर्नाटक में हुआ था। अपने छोटे-से गाँव के मन्दिर में होने वाले भजन और कीर्तन भीमसेन के मन को बहुत छूते थे। उनकी माँ एक अच्छी गायिका थीं और पिता गुरूराजजी नामी शिक्षक थे। दादा भीमाचार्य जानेमाने संगीतज्ञ थे। गायन में उनकी रुचि अपनी माँ के कारण हुई। यह देख सात साल की उम्र में घर पर उनकी संगीत-शिक्षा शुरू कर दी गई। शिक्षक थे – चिन्नप्पा कुर्तकोटी नाम के धोबी। वे गाते तो ठीक थे लेकिन गाँव की एक दुकान में बजने वाले उस्ताद अब्दुल करीम खाँ साहब के एक रिकॉर्ड ने भीमसेन को इतना प्रभावित किया कि उन्होंने ठान लिया कि गाना तो ऐसा ही गाना है। इसके लिए चाहे घर ही छोड़ना पड़े। वह रिकॉर्ड था – राग बसन्त में एक ख्याल "फगवा ब्रिज देखन को चलो री" और राग झिंझोटी में ठुमरी "पिया बिन नहीं आवत चैन" का। उस वक्त वे दस-बारह बरस के रहे होंगे।

खैर, किशोर भीमसेन घर में किसी को कुछ बताए बिना निकल पड़े ग्वालियर के लिए। न पास में पैसे, न पहचान, न रेल का टिकिट। रेल में गाकर उन्होंने साथी यात्रियों का मन मोह लिया। उनसे कुछ खाने को भी मिल जाता। टिकिट न होने से उन्हें ट्रेन से उतार भी दिया गया। खैर, किसी तरह रुकते-भटकते ग्वालियर पहुँचने में उन्हें तीन महीने लग गए। वहाँ जाने-माने सरोद वादक उस्ताद हफीज़ खाँ साहब से और माधव संगीत विद्यालय में संगीत की शिक्षा ली। कुछ समय बाद उनका मन वहाँ से उचटने लगा। वे एक बार फिर निकल पड़े – बिना टिकिट। पहले दिल्ली फिर जालंधर पहुँचे। यहाँ उन्होंने मंगत राम के संगीत विद्यालय से ध्रुपद-धमार की शिक्षा ग्रहण की।



साभार - फोटो - डेनियल फ्रकस

भीमसेनजी कहते हैं कि यहाँ उन्हें बहुत कुछ सीखने को मिला। यहाँ संगीत की उनकी समझ और गहरी हुई। यहाँ खूब संगीत था, अच्छा खाना था और शारीरिक तन्दुरुस्ती पर भी बहुत ज़ोर दिया जाता था। कुछ समय बाद पं. विनायकराव पटवर्धन ने उनसे कहा कि तुम्हारे पुश्तैनी ज़िले धारवाड़ के गाँव कुंडगोल में पं. सवाई गंधर्व जैसे महान गुरू हैं। तुम उनके पास जाओ। बालक भीमसेन को याद आया कि 1932 में अपने गाँव में उसने सवाई गंधर्व का गायन सुना था और सोचा था कि मैं इनसे गाना सीखूँ।

वे जब सवाई गंधर्व से धारवाड़ में मिले तो 13 साल के थे। पं. सवाई गंधर्व ने उनकी कठिन परीक्षा ली। भीमसेन जी कहते हैं कि शुरू के दो साल तक उन्होंने मुझे गाना सिखाया ही नहीं। घर का काम करने के साथ-साथ मैं बस गुरूजी का गाना सुनता रहता और उन्हीं की तरह गाने की कोशिश करता। दो साल बाद मेरी शिक्षा शुरू हुई। सिखाने का उनका अपना तरीका था। पहले वो गला तैयार करवाते थे। सुबह-शाम एक-एक घण्टे की साधना पाँच साल तक चली।

गुरू के घर रहने से मुझे उनका दस-बारह घण्टे का रियाज़ रोज़ सुनने को मिलता। इससे मुझे बहुत लाभ मिला। वे एक बार में बहुत सारा कभी नहीं सिखाते थे। जो राग सिखाना हो उसे पहले वो खुद गाते। हम ध्यान से उन्हें सुनते। बाद में वे उसका एक-एक टुकड़ा देते और गति आने तक हमसे गवाते रहते। वे मुझे सुबह जल्दी उठाते। सबसे पहले हम 3-4 घण्टे व्यायाम करते फिर लगभग 9 घण्टे तक रियाज़ करते। बीच-बीच में वे कहते रहते, "अभी बात नहीं बनी। तुम अभी भी सोच लो भीमसेन यह गाने-बजाने का मामला बड़ा टेढ़ा है। तुम चाहो तो अभी भी घर लौट सकते हो।" लेकिन भीमसेन कहाँ मानने वाले थे! वे भिड़े रहे और सुध-बुध भूलकर बस रियाज़ करते रहे। ऐसा तीन साल तक चला। भीमसेन कहते हैं कि इन सालों में उन्होंने मुझे कुल तीन राग सिखाए – टोड़ी, मुलतानी और पूरिया। अगर राग पक्के हो जाएँ तो पास के राग अपने आप ही आ जाते हैं।

जब पं. सवाई गंधर्व ने महसूस किया कि भीमसेन गाने के प्रति गम्भीर हैं तो वे उन्हें अपने साथ कार्यक्रमों में ले जाने लगे और गाने का मौका देने लगे। गुरू के साथ बैठकर गाने से उनमें एक अद्भुत आत्म-विश्वास पैदा हुआ।

इसके बाद पं. भीमसेन जोशी ने गायन को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। सन छियालिस में अपने गुरू की अस्वस्थता के कारण भीमसेनजी को एक कार्यक्रम में गाना पड़ा। उन्होंने राग मल्हार गाया और बस छा गए। वे अपने गुरू के नाम पर पिछले पचास सालों से पुणे में पं. सवाई गंधर्व संगीत समारोह का आयोजन कर रहे हैं। देश-विदेश से श्रोता और कलाकार इस प्रतिष्ठित कार्यक्रम में भाग लेने आते हैं। हर साल यह आयोजन दिसम्बर महीने में होता है।

जैसे ही मन्ना डे को संगीतकार शंकर-जयकिशन ने बताया कि आपको भीमसेनजी के साथ एक गाना गाना है तो घबराकर वे मुम्बई से दूर लोणावाला भाग गए। बाद में बड़ी समझाइश के बाद वे इस बात के लिए राज़ी हुए कि फिल्म में इस गायन मुकाबले में आपको भीमसेनजी को पराजित करते दिखाया जाएगा।

संगीत में घराने

हमारे देश में शास्त्रीय संगीत की परम्परा का विकास विभिन्न घरानों द्वारा हुआ है। हर घराने की अपनी खास गायन शैली होती है जिसमें सुरों को साधा जाता है। यही उस घराने की पहचान बन जाती है। गुरू अपने शिष्यों के स्वर को लगातार साधता है, विकसित करता है। गुरू के शहर के नाम पर घरानों के नाम रखे जाते हैं। शिष्य अपने घराने का प्रतिनिधित्व करते हैं। संगीत के कुछ प्रतिष्ठित घराने हैं – ग्वालियर, जयपुर, पटियाला, किराना (कुरुक्षेत्र-हरियाणा के पास की एक जगह), आगरा घराना आदि। पं. भीमसेन जोशी किराना घराने के प्रतिनिधि गायक हैं। उनके गुरू पं. सवाई गंधर्व और पं. गंधर्व के उस्ताद अब्दुल करीम खाँ साहब किराना घराने के अग्रणी कलाकार थे। खाँ साहब किराना गाँव से धारवाड़ गए और वहीं बस गए। वे ही इस घराने के संस्थापक हैं। भीमसेनजी ने कई रागों की रचना की है। जैसे कलाश्री, मारवा-श्री, ललित-भटियार आदि। पंडितजी किराना घराने का होने में गर्व महसूस करते हैं। फिर भी वे कहते हैं कि घराने की सीमा से ऊपर उठने पर ही कलाकार बड़ा बनता है। दूसरे घरानों की खासियतों को ग्रहण करने के लिए उसे क्रांतिकारी बनना पड़ता है। जो भीमसेनजी ने अपनी गायकी में बखूबी किया।

जंगल में जमी महफिल...

गायन के अलावा पंडितजी को क्रिकेट और कार चलाने का भी बेहद शौक है। उनके पास बरसों तक मर्सीडीज़ कार थी। भारत भर में अपने कार्यक्रमों में वे खुद ही कार चलाकर जाया करते थे। एक बार ग्वालियर के पास से गुज़रते हुए बीहड़ों में भीमसेनजी का सामना डाकुओं से हुआ। गर्मियों के दिन थे और भीमसेनजी ने लुंगी और बनियान पहन रखी थी। पंडितजी का शरीर शुरू से कसावट भरा रहा है। डाकुओं ने परिचय पूछा तो उन्होंने बताया कि वे गायक हैं। गाड़ी में तानपुरा और हारमोनियम देखने के बाद ही डाकुओं को उनके कहे पर यकीन हुआ। वे बोले कि हम आपको जाने देंगे लेकिन आपको हमें गाना सुनाना होगा। वे करते भी क्या! फिर क्या था जंगल में महफिल जमी।

फिल्मी गायन...

पं. भीमसेन जोशी फिल्मों में भी गा चुके हैं। फिल्म *बसन्त बहार* के लोकप्रिय गीत "केतकी गुलाब जुही चंपक बन फूले" में उनके साथ जाने-माने गायक मन्ना डे की आवाज़ भी है। इससे जुड़ी एक मज़ेदार बात है – जैसे ही मन्ना डे को संगीतकार शंकर-जयकिशन ने बताया कि आपको भीमसेनजी के साथ एक गाना गाना है तो घबराकर वे मुम्बई से दूर लोणावाला भाग गए। बाद में बड़ी समझाइश हुई कि इस गायन मुकाबले में आपको भीमसेनजी को पराजित करते दिखाया जाएगा। बस, मन्ना डे तैयार हो गए।

सादा जीवन जीने वाले पंडित भीमसेन जोशी शोहरत और नाम से बेखबर रहने वाले स्वर साधक हैं। जब तुम ये पंक्तियाँ पढ़ रहे होगे तब यकीनन दुनिया में कहीं न कहीं भीमसेन जी का गाना बज रहा होगा। "मिले सुर मेरा तुम्हारा" और "देस राग" जैसी राष्ट्रीय प्रस्तुतियों में पंडित भीमसेन हमारे देश के "आइकॉन" के रूप में नज़र आते हैं। भीमसेनजी पर तीन फिल्में भी बनी हैं। पहली फिल्म हॉलैण्ड के एक व्यक्ति ने बनाई है। दूसरी फिल्म *राग मियाँ मल्हार* है और तीसरी फिल्म गुलज़ार ने बनाई है। भारतरत्न के पहले उन्हें पद्मश्री, पद्म-भूषण और पद्म-विभूषण से नवाज़ा जा चुका है। उनके पिता ने भीमसेनजी के जीवन पर एक किताब भी लिखी है – *नाडपुत्रा*। पिता का अपने बेटे पर किताब लिखने के उदाहरण बिरले ही होंगे।

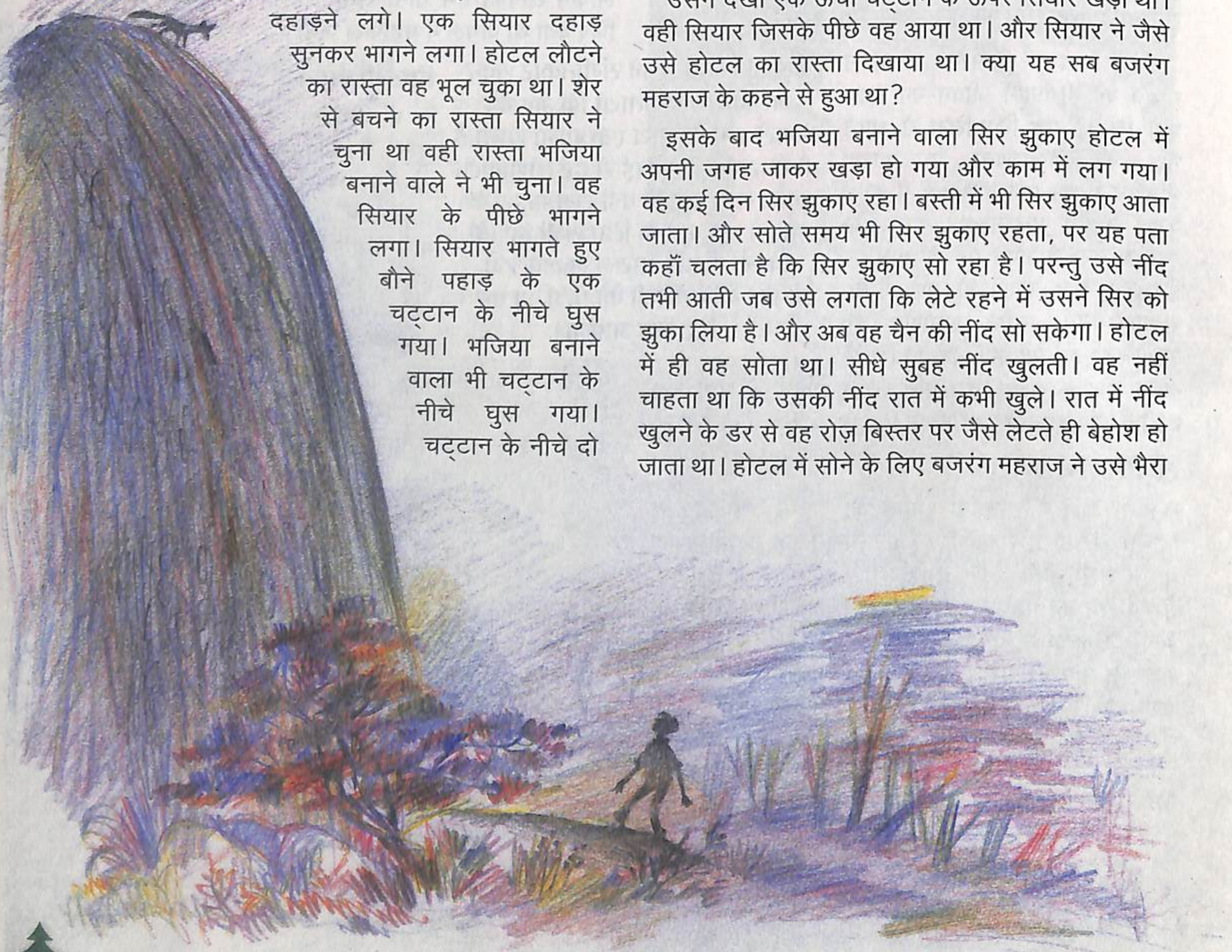
विनोद कुमार शुक्ल

हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी और बौना पहाड़! (XIII)

भजिया बनाने वाला चार-पाँच साल हुए बजरंग होटल में काम कर रहा था। होटल में काम करने से भय लगने लगा था। एक बार भागने की उसने कोशिश की। भाग कर वह घने जंगल में छुप गया। इतनी दूर आकर जैसे ही उसने सोचा कि वह बच गया वैसे ही बिलकुल पास उसे बजरंग महराज की आवाज़ आई, "अँधेरा होने के पहले होटल लौट आना।" इसके बाद शेर दहाड़ने लगे। एक सियार दहाड़ सुनकर भागने लगा। होटल लौटने का रास्ता वह भूल चुका था। शेर से बचने का रास्ता सियार ने चुना था वही रास्ता भजिया बनाने वाले ने भी चुना। वह सियार के पीछे भागने लगा। सियार भागते हुए बौने पहाड़ के एक चट्टान के नीचे घुस गया। भजिया बनाने वाला भी चट्टान के नीचे घुस गया। चट्टान के नीचे दो गुफाएँ थीं। सियार किस गुफा में घुसा वह यह देख नहीं पाया था। दाहिने हाथ की गुफा में वह घुस गया। गुफा के अन्दर अँधेरा था। टटोल-टटोलकर वह बढ़ रहा था। उसे लगा रहा था कि अँधेरा हो गया है। बजरंग महराज ने कहा था कि अँधेरा होने से पहले लौट आना। पर अँधेरा नहीं हुआ था। कुछ आगे जाने से उसे हल्का उजाला दिखने लगा था। वह गुफा के मुहाने तक पहुँच गया। गुफा के मुँह से वह बाहर निकला। दो चट्टानों के बीच सँकरी जगह थी। दोनों चट्टानों की दीवाल के ऊपर छत की तरह एक चट्टान पड़ी थी। बाहर आकर उसने देखा सामने थोड़ी दूर पर बजरंग होटल है। वह होटल के सामने अजीब सकते में उपस्थित हुआ था।

उसने देखा एक ऊँची चट्टान के ऊपर सियार खड़ा था। वही सियार जिसके पीछे वह आया था। और सियार ने जैसे उसे होटल का रास्ता दिखाया था। क्या यह सब बजरंग महराज के कहने से हुआ था?

इसके बाद भजिया बनाने वाला सिर झुकाए होटल में अपनी जगह जाकर खड़ा हो गया और काम में लग गया। वह कई दिन सिर झुकाए रहा। बस्ती में भी सिर झुकाए आता जाता। और सोते समय भी सिर झुकाए रहता, पर यह पता कहाँ चलता है कि सिर झुकाए सो रहा है। परन्तु उसे नींद तभी आती जब उसे लगता कि लेटे रहने में उसने सिर को झुका लिया है। और अब वह चैन की नींद सो सकेगा। होटल में ही वह सोता था। सीधे सुबह नींद खुलती। वह नहीं चाहता था कि उसकी नींद रात में कभी खुले। रात में नींद खुलने के डर से वह रोज़ बिस्तर पर जैसे लेटते ही बेहोश हो जाता था। होटल में सोने के लिए बजरंग महराज ने उसे भैरा



से कहलवाया था। बरामदे के एक कोने में वह सोता था।

भजिया बनाने वाले को बाद में याद आया कि पत्तों के दबने से जो चरमर की आवाज़ थी बजरंग महराज के चमरौधे जूते की आवाज़ से मिलती-जुलती थी। होटल में सोने की पहली रात उसे ठीक से नींद नहीं आई थी। रात में उसे चरमर,चरमर की आवाज़ आ रही थी। जैसे बजरंग महराज चल रहे हों। चलते हुए दूर जा रहे हों। फिर इतनी दूर चले गए हों कि चरमर की आवाज़ नहीं आ रही है। बहुत देर बाद दूर से उनके पास आने की आवाज़ आती कि लौट रहे हैं। फिर आवाज़ बन्द हो जाती कि आ गए और तखत पर लेट गए। फिर इतना सन्नाटा हो जाता कि बजरंग महाराज के सोने के साथ-साथ उनका जूता भी सो गया हो। कहीं ऐसा तो नहीं कि बजरंग महराज जंगल में टहलते हो और उसकी आवाज़ कमरे में आती हो। या कमरे में टहलते हों और आवाज़ जंगल में आती हो। या वे कमरे में टहलते हों तो कमरे में आवाज़ आती हो। तभी शेर भी जंगल में टहलने लगता हो और जंगल में आवाज़ आती हो।

एक दिन उसने बरामदे में देहरी के पास एक बड़ा-सा चमरौधा जूता देखा। यह एक जूता बरामदे में कैसे आ गया? दूसरा जूता कहाँ है? ये किसका अकेला जूता है? काले रंग का मटमैला। जूते के चमड़े में झुर्रिया थीं कि बहुत पुराना है। बूढ़ा जूता। बजरंग महराज इतने बूढ़े नहीं होगे। बजरंग महराज के पिता का होगा। खानदानी जूता। जूते के तले में चौड़े मत्थे के खीले ठुके थे कि तला घिसे नहीं। परन्तु इस कारण जूता ऐसा था कि शेर को जूते से मारें तो वह भी मर जाए – यह किसी ने कहा नहीं था। यह किसी ने सोचा भी नहीं था। परन्तु बजरंग महराज के साथ सन्दर्भ बन सकता था।

बजरंग महराज को बरामदे में आया हुआ कभी देखा नहीं गया था। तब जूता क्या खुद चलकर आया होगा? अकेला जूता। दूसरा जूता खुद चलकर कहाँ गया। बजरंग महराज का जूता उनके पालतू जैसा। उनके "आ, आ" कहकर बुलाने से शायद आ जाए। उस जूते की ऐड़ी में खड़ी पूँछ जैसी चमड़े की पट्टी थी। जूते के मुँह में पैर डालने की सुविधा के लिए या खीले में टाँगने के लिए अथवा उँगली में लटकाकर चलने के लिए। इस तरह के जूते बेचने वाले इसी से जोड़ी में सुतली बाँधकर कँधे में लटका लेते थे। पहनने का समय होते ही ये पालतू जूते इसे पूँछ की तरह हिलाते होंगे।

भजिया बनाने वाला काम में लग गया था। होटल में ग्राहक थे। तब एक ग्राहक ने जूते को चलते हुए देखा। कमरे के अन्दर से जूते को बुलाने की धीरे-धीरे "आ, आ" की आवाज़ आ रही थी। और देहरी लाँघ कर जूता अन्दर चला गया। तब ग्राहक प्लेट में चाय डालकर चुस्की ले रहा था। वह इतना अचम्भित था कि उसकी केवल एक खिंची साँस के



चित्र-अतनु राय

साथ प्लेट की पूरी चाय गले के अन्दर चली गई। उसे यह मालूम नहीं पड़ा था कि उसने चाय पी। शायद उसने चाय की साँस ली थी। इसके बाद उसकी साँस कुछ देर के लिए रुक गई थी। यदि उसकी साँस नहीं रुकती और वह फिर साँस छोड़ता तो चाय की साँस छोड़ता। अगर वह इस बात को किसी से बताता तो उसकी बात पर विश्वास नहीं होता। होटल से बाहर निकलते ही उसे भी ठीक से विश्वास नहीं हो रहा था कि क्या उसने सच में ऐसा देखा था।

इसके बाद वह जब भी चाय पीने आता तो जूते को इधर-उधर देखता कि चलते हुए कभी दिख जाए। कुछ ग्राहक बरामदे में चढ़ने के पहले जूते को इधर-उधर देखते कि चलते हुए कभी दिख जाए। कुछ ग्राहक बरामदे में चढ़ने के पहले जूते उतारकर हाथ-पैर धोते तो जूते को वहीं बरामदे के बाहर छोड़ देते कि पैर गीले हैं। एक बार एक ग्राहक के जूते नहीं मिले। धोखे से कोई पहन कर चला गया होता। तब जिसने चमरौधे जूते को चलते हुए देख था उसने उस आदमी से पूछा, "आपके जूते खो गए?"

"हाँ, भाई।" उसने कहा।

"अपने आप कैसे खो सकते हैं।" उसने आश्चर्य प्रकट किया जिसने जूतों को चलते हुए देखा था।

"अपने आप क्यों खोएँगे। जूते तो मुझसे खो गए हैं।" जिसके जूते थे उसने कहा। पर उसे कुछ समझ नहीं आया कि बात का मुद्दा क्या है।

"जूते आप से नहीं गुमे हैं। आपने तो सम्हाल कर रखे थे।" उसने कहा। बस्ती में कभी चोरी नहीं हुई।

"तो फिर?" उसने पूछा जिसके जूते खो गए थे।

"आपको पैर से उतारना नहीं था। आप जहाँ जाते हैं जूतों को भी वहीं जाना पड़ता है क्योंकि आप उसे पहने हुए होते हैं। जूते अपने मन से भी कहीं जाना चाहते हैं। चले गए होंगे। पालतू नहीं हुए होंगे। इसलिए लौटकर नहीं आए। कितना पुराना जूता है?"

जारी...

एलीथिया डी रोज़ारियो

तुम भी बनाओ



इस क्रिसमस पर **केक** बनाने का आइडिया कैसा है? हमें तो लग रहा है जब तुम केक खाना पसन्द करते हो तो बनाना भी तुम्हें अच्छा ही लगेगा। तो ऐसा करो सबसे पहले तो सारे सामान की तैयारी कर लो। घर के बड़ों को भी इसमें शामिल करोगे तो बनाने-खाने में मज़ा और आएगा।

150 ग्राम मक्खन या डालडा, 3 अण्डे, डेढ़ कप पिसी चीनी, डेढ़ कप सूजी, एक-चौथाई कप मैदा, 3 छोटी चम्मच पिसे मसाले (इलायची, दालचीनी, लौंग, जायफल), एक कप कतरे हुए सूखे मेवे (किशमिश, काजू, बदाम, अखरोट आदि), चुटकी भर नमक, 1 चम्मच बेकिंग पाउडर, आधा कप दूध (ताकि पेस्ट बहुत सख्त न हो।)

सबसे पहले अण्डों को तोड़कर उसके सफेद और पीले हिस्से को अलग-अलग बर्तनों में रख लो। एक तीसरे बर्तन में मक्खन और चीनी को अच्छी तरह से मिला लो। इसमें अण्डे का पीला हिस्सा मिलाकर इतना फेंटो कि पीली-सी क्रीम बन जाए। अण्डे के सफेद हिस्से में नमक मिलाकर फेंटो जब तक हल्की झाग न बन जाए। अब पीली क्रीम में थोड़ा-थोड़ा कर सूजी और सफेद अण्डा डालते जाएँ। जब सूजी खत्म हो जाए तो बारी-बारी से मैदा और सफेद फिंटा अण्डा डालें। इसके बाद बेकिंग पाउडर, मसाले, कतरे हुए सूखे मेवे डालो। अन्त में, दूध डालकर सबको अच्छी तरह से फेंट लो। हाँ, कुछ लोग तो बेकिंग पाउडर को छोड़कर बाकी सभी चीज़ें एक साथ फेंट लेते हैं। तुम ऐसा करके भी देख सकते हो।

कुकर के डिब्बे या बेकिंग ट्रे में डालडे का पतला लेप लगाकर उसमें थोड़े-से मैदे को अच्छी तरह से फैला लो। अतिरिक्त मैदे को निकाल लो। अब केक के घोल को इसमें फैला लो। केक को ओवन या प्रेशर कुकर दोनों में बनाया जा सकता है। कुकर में न तो पानी डलेगा और न ही ढक्कन में सीटी लगानी है। कुकर के डिब्बों के नीचे रखनी वाली जाली ज़रूर रखना।

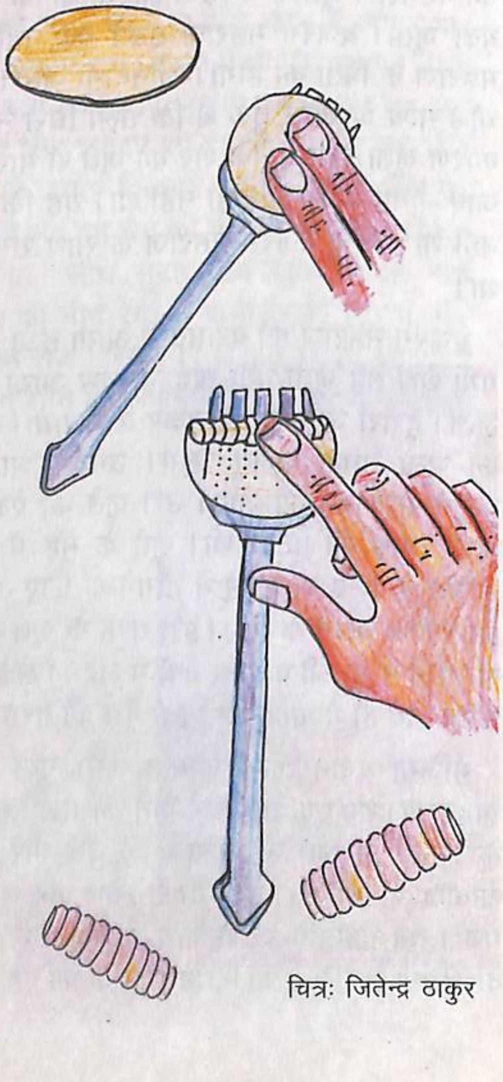
शुरू के 10 मिनिट कुछ तेज़ आँच रखने के बाद केक धीमी आँच में बनने देना। सिलाई या चाकू को केक में घुसाने पर अगर वो साफ-सुथरा ही निकल आए तो समझ लो केक तैयार है।

कलकल

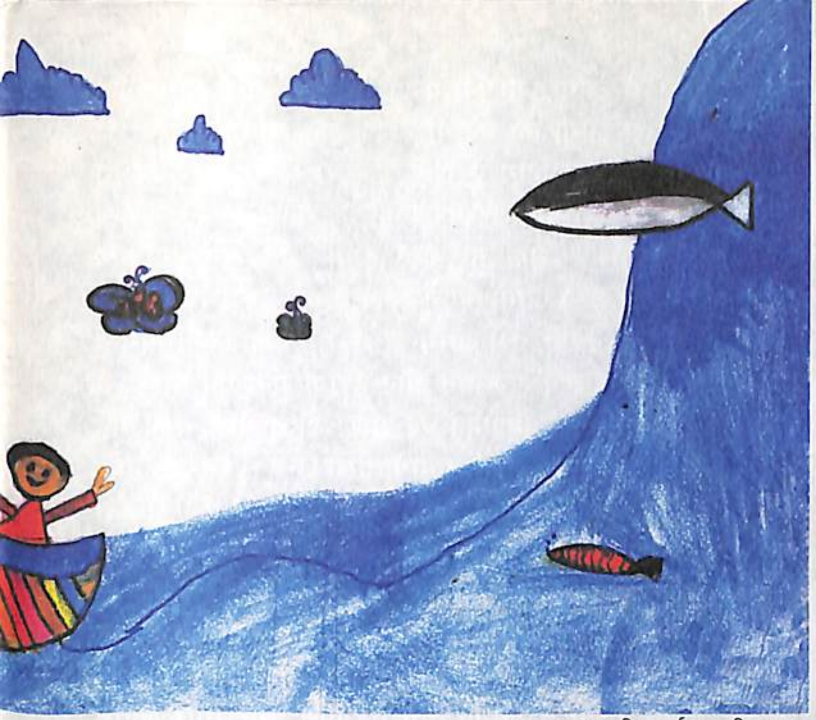
सामग्री: 250 ग्राम मैदा, 75 ग्राम सूजी, 2 चम्मच डालडा, 2 चम्मच पिसी चीनी, एक-चौथाई चम्मच बेकिंग पाउडर, एक चुटकी नमक, खाने वाला गुलाबी रंग, वेनिला एसेंस की कुछ बूँदें

तरीका: सभी चीज़ों को मिलाकर गरम पानी या दूध से मुलायम गूँथ लो। गीले सूती कपड़े से इसे कम से कम आधा घण्टे तक ढँककर रख दो।

अब इस गुँथे आटे की छोटी-छोटी गोल लोईयाँ बना लो। छुरी-काँटे वाले काँटे के पीछे लोई को चपटा कर लो। इससे आटे पर निशान बन जाएँगे। इसे इस तरह लपेटो कि निशान वाला हिस्सा बाहर की ओर हो। किनारों को हलके से दबा लो जिससे ये खुलें नहीं। सारे कलकल बनाने के बाद इन्हें तलना होगा।



चित्रः जितेन्द्र ठाकुर



पलक, पहली, दुर्ग, छत्तीसगढ़



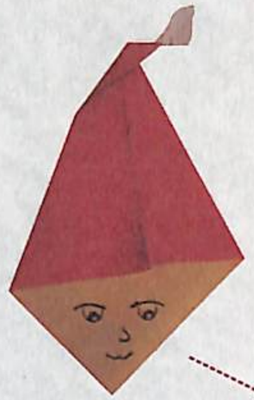
कार्तिक,केजी-1, कानपुर, उ.प्र.



चेतन हांडवाना, तीसरी

सैन्टा क्लॉज

पहली कक्षा में पढ़ने वाली रितिका गौर तुम्हें सैन्टा क्लॉज बनाना सिखा रही है।



1 लाल रंग का चौकोर कागज़ लो और उसे चित्र में दिखाए तरीके से मोड़ लो। नीचे के हिस्से में आँख व मुँह आदि बना लो और उपर के नुकीले हिस्से को मोड़कर गोंद या फेविकोल से चिपका लो। इसमें रुई या सफेद कागज़ का टुकड़ा चिपका कर टोपी का फुन्दा बना लो।

2 एक दूसरे रंग का चौकोर कागज़ लो और उसे भी चित्र में बताए तरीके से मोड़ लो।





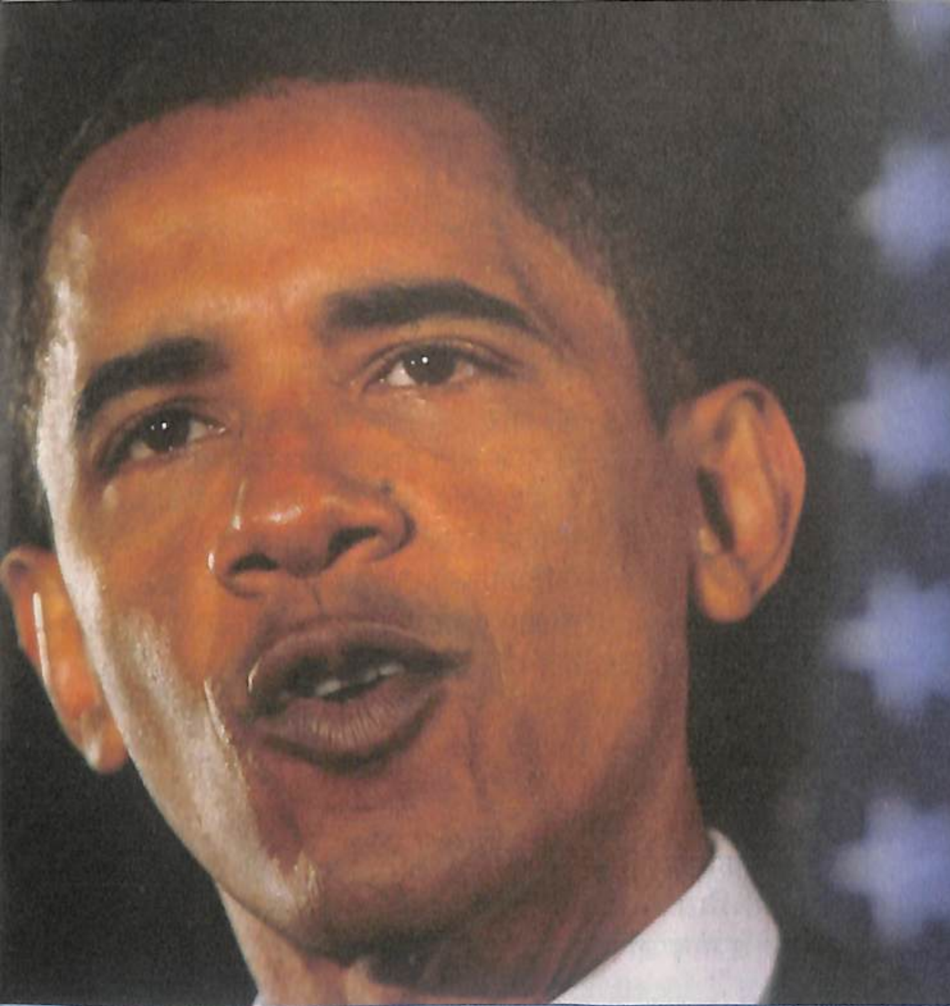
3 अब इन दोनों हिस्सों को कार्डशीट पर चिपका लो और रुई से दाढ़ी-मूँछ बना लो।

4 रंगीन कागज़ की चार बराबर छोटी-छोटी पट्टियाँ काटकर चित्रानुसार कार्डशीट पर चिपका लो। इनसे सैन्टा क्लॉज के हाथ व पैर बन जाएँगे। सैन्टा क्लॉज तैयार है।



अब इसे सजाने के लिए कार्डशीट की खाली जगह में क्रिसमस-ट्री, केक, गिफ्ट आदि बना लो।

चित्र - जितेन्द्र ठाकुर



बहुत से लोग इसे परी-कथा का सच होना मानते हैं। बहुत से लोगों का कहना है कि यह अविश्वसनीय की जीत है। कई लोग ऐसे हैं जो इसे सिर्फ अमरीका ही नहीं, दुनिया के स्तर पर एक बड़े परिवर्तन के रूप में देखते हैं। "बराक हुसैन ओबामा" का अमरीका का राष्ट्रपति चुना जाना अपने साथ बहुत से "प्रथम" लेकर आया है। वे एक ऐसे समय में अमरीका के शासन प्रमुख चुने गए हैं जब अफगान और ईराक युद्ध की वजह से पूरी दुनिया में अमरीका की साख बहुत नीचे चली गई है। वे जब भी बोलते हैं सामने वाला उन्हें मंत्रमुग्ध होकर सुनता है। उनकी वाक-कला उनकी सबसे बड़ी ताकत मानी जाती है। हम यहाँ उस भाषण का अंश पेश कर रहे हैं जिससे वे पहली बार सुर्खियों में आए थे। 2004 के चुनावों के पहले डेमोक्रेटिक पार्टी के सम्मेलन में पहली बार बराक ओबामा को देश और दुनिया ने सुना। उनकी आदत है कि वे अपनी बातों में अपने व्यक्तिगत जीवन की कहानियाँ पिरो देते हैं। उनके लिए कहा जाता है कि वे अपनी हर कमज़ोरी को अपनी मज़बूती में बदल लेते हैं। इस अंश से उनके शुरुआती जीवन और परिवार के बारे में भी पता चलता है और उनकी अपने देश अमरीका को लेकर सकारात्मक सोच भी नज़र आती है।

मिहिर

2004 डेमोक्रेटिक पार्टी सम्मेलन में दिया गया मुख्य वक्तव्य

"आज की रात मेरे लिए विशेष सम्मान की रात है क्योंकि सच कहें तो आज इस मंच पर मेरा होना इतना आसान नहीं था। मेरे पिता एक विदेशी छात्र थे जिनका जन्म और पालन-पोषण केन्या के एक छोटे-से गाँव में हुआ। उनका बचपन बकरियाँ चराते हुए बीता और वे एक टीन की छत वाले स्कूल में पढ़ने जाते थे। उनके पिता यानी मेरे दादा एक घरेलू नौकर थे, एक रसोइया। लेकिन मेरे दादा ने अपने बेटे के लिए बड़े सपने देखे थे। कड़ी मेहनत और लगन के बूते मेरे पिता ने एक जादुई देश अमरीका में पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति पाई। अमरीका जो स्वतंत्रता और अवसरों का देश है। यहाँ पढ़ने के दौरान मेरे पिता मेरी माँ से मिले। मेरी माँ का जन्म दुनिया के दूसरे किनारे बसे शहर कैन्सास में हुआ था। उनके पिता अधिकांशतः तेल रिग्स और खेतों में काम किया करते थे। मेरी नानी ने अपनी बेटी को बड़ा किया और साथ ही एक बम बनाने के कारखाने में काम करती रहीं। युद्ध की समाप्ति के बाद उन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखी और आगे चलकर अपने लिए घर खरीदा। अवसरों की तलाश में उन्होंने पश्चिम का रुख किया।

उन्होंने भी अपनी बेटी के लिए एक बड़ा सपना देखा। दो अलग-अलग महाद्वीपों में पैदा हुआ एक साझा सपना। मेरे माता-पिता ना सिर्फ असीम प्यार साझा करते हैं, वे इस देश की अनन्त सम्भवनाओं में एक स्थायी विश्वास भी साझा करते हैं। उन्होंने मुझे एक अफ्रीकी नाम दिया, "बराक" यानी "भाग्यशाली"। यह मानते हुए कि सहिष्णु अमरीका में आपका नाम आपकी सफलता में बाधक नहीं बन सकता। उन्होंने मुझे सबसे अच्छे स्कूल में भेजने का सपना देखा, हालाँकि वे अमीर नहीं थे। उनका मानना था कि एक उदार अमरीका में अपनी प्रतिभा को तराशने के लिए आपका अमीर होना ज़रूरी नहीं। आज वे दोनों नहीं हैं, लेकिन मुझे पता है कि आज की रात वे मुझे गर्व भरी निगाहों से देख रहे होंगे।

आज जो मैं यहाँ खड़ा हूँ अपनी बहुरंगी विरासत का आभारी हूँ। और मैं जानता हूँ कि मेरे माता-पिता के सपने मेरी दोनों बेटियों में आगे जिएँगे। मैं जानता हूँ कि मेरी यह कहानी एक वृहत अमरीका कहानी का हिस्सा है। दुनिया के और किसी मुल्क में मेरी यह कहानी सम्भव ना होती। हमारे देश की महानता आसमान छूती इमारतों में नहीं, न ही हमारी सैन्य ताकत में है। यह हमारी अर्थव्यवस्था के वृहत आकार में भी नहीं। यह महानता छुपी है एक सामान्य से वादे में "एक सत्य कि दुनिया में सभी इन्सान समान हैं" कि उन्हें बनाने वाले ने कुछ समान अधिकार दिए हैं। और इनमें शामिल हैं अपनी ज़िन्दगी आज़ादी से जीने और अपनी खुशियों को पाने के अधिकार।"

जन्म
04/08/1961

जन्मस्थान
हवाई (अमरीका)



माँ अमरीका की निवासी और पिता केन्याई। बचपन इन्डोनेशिया में बीता। दस साल की उमर में वापिस अमरीका आए और अपने नाना-नानी के साथ हवाई में रहे। उन्होंने न्यूयॉर्क में कोलम्बिया विश्वविद्यालय से राजनीति विज्ञान में स्नातक की उपाधि सन् 1973 में प्राप्त की। सन् 1977 में उन्होंने हार्वर्ड लॉ स्कूल में दाखिला लिया। यहीं उन्हें प्रतिष्ठित पत्रिका "हार्वर्ड लॉ रिव्यू" का पहले साल सम्पादक और फिर अध्यक्ष बनाया गया। इसी दौरान अपनी पहली किताब *ड्रीम्स फ्रॉम माय फादर* लिखने की शुरुआत हुई। यह किताब उनके व्यक्तिगत जीवन पर आधारित है और सन् 1995 में प्रकाशित हुई है। बराक ओबामा 2004 से अमरीकी सिनेट के सदस्य हैं। वे अमरीकी सिनेट के सदस्य बनने वाले पाँचवें अफ्रीकी-अमरीकी थे और अब वे अमरीका के पहले अश्वेत राष्ट्रपति बनेंगे।

बराक ओबामा बाएँ हाथ से काम करते हैं और उनका पसन्दीदा खेल बास्केटबाल है। वे स्कूली बास्केटबाल टीम के सदस्य रहे हैं। खाली समय में वे स्क्रेबल (शब्द पहेली जैसा खेल) खेलना पसन्द करते हैं। उनकी दूसरी किताब *ऑडेसिटी ऑफ होप* सन 2006 में प्रकाशित हुई है। वे अपनी पहली किताब के लिए "बेस्ट स्पोकन ऑडिओ बुक" का ग्रेमी पुरस्कार भी जीत चुके हैं। उनकी वेबसाइट पर हिंदी और मलयालम में भी सूचनाएँ होती हैं। उनकी जीत को पूरे अमरीका में एक बड़े परिवर्तन के तौर पर देखा जा रहा है।



अपनी माँ के साथ ओबामा

एक जापानी हाइकू

मेरे छोटे से गाँव में
मक्खियाँ भी डरतीं
बड़े आदमी को काटने से।

-इस्सा

कवर-2 का बाकी हिस्सा...

ओबामाः अमरीका के पहले अश्वेत राष्ट्रपति

लोगों की पहुँच से दूर रखा। यह 1950-1960 के दशक की बात है जब अफ्रीकी-अमरीकी लोगों ने अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन छेड़ दिया। तब अमरीकी सरकार ने ऐसे कदम उठाए जिनसे शिक्षा और नौकरियाँ इन लोगों की पहुँच में आ गईं। यह एक बहुत मुश्किल संघर्ष था। कई लोगों की जानें गईं। लोगों के सबसे लोकप्रिय नेता मार्टिन लूथर किंग की 1968 में हत्या कर दी गई।

बराक ओबामा का अमरीकी राष्ट्रपति के रूप में चुना जाना एक तरह से इस लम्बे चले आ रहे संघर्ष का अन्त है। वो संघर्ष जिसमें अफ्रीकी-अमरीकी अश्वेत हर कदम पर भेदभाव के खिलाफ लड़ रहा था। और एक सामान्य अमरीकी की तरह जीने के अपने अधिकार की माँग कर रहा था। यह संकेत है अमरीकी समाज के खुलेपन का। इससे पता चलता है कि वे अब राष्ट्र निर्माण में अफ्रीकी-अमरीकी, लातिन-अमरीकी लोगों की बराबर भूमिका को स्वीकारने को तैयार हैं।

भारत में भी उन समुदायों की मदद के लिए कदम उठाए गए हैं जो जाति-प्रथा या अन्य कारणों से सदियों से भेदभाव भुगतते आए हैं।

अमरीकी गृहयुद्ध की तरह भारत में भी भीमराव अम्बेडकर जैसे समाज-सुधारकों ने लम्बा संघर्ष किया है। इनका उद्देश्य था हाशिए में जी रहे लोगों खासकर दलितों तथा आदिवासियों को बेहतर जीवन दिलाना। इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था शिक्षा और नौकरियों में आदिवासियों, दलितों और अन्य सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े समुदायों को आरक्षण देना।

भारत में दलितों, आदिवासियों और पिछड़ा वर्ग को राजनीति में भी आरक्षण दिया गया है। इसी का नतीजा है कि इन अल्पसंख्यक समुदायों के हितों को ध्यान में रखकर कई राजनीतिक पार्टियाँ बनीं। मसलन, समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी। इनसे उन समुदायों में गर्व की भावना आई है जिनका प्रतिनिधित्व ये पार्टियाँ करती हैं।

मायावती जैसे दलित राजनेताओं का उभरना अमरीका में ओबामा सरीखे अश्वेत राजनेता के उभरने जैसा ही है। हमारे देश में हम एक दलित और एक अल्पसंख्यक समुदाय का राष्ट्रपति देख चुके हैं। हमारी मौजूदा राष्ट्रपति एक महिला हैं। हम यह नहीं भूल सकते कि हमारे देश में महिलाओं के प्रति भी कई तरह के भेदभाव बरते जाते हैं। हमने कई महिलाओं को मुख्यमंत्रियों के रूप में भी निर्वाचित किया है। हमें उस दिन का इन्तज़ार रहेगा जब भारत में भी कोई दलित या आदिवासी प्रधानमंत्री के पद पर निर्वाचित हो – वैसे ही जैसा अमरीका में हुआ है।

सभी फोटो-इंटरनेट से साभार.

मेरा पन्ना



कुन्दन, चौथी, शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र, नरवर, म.प्र

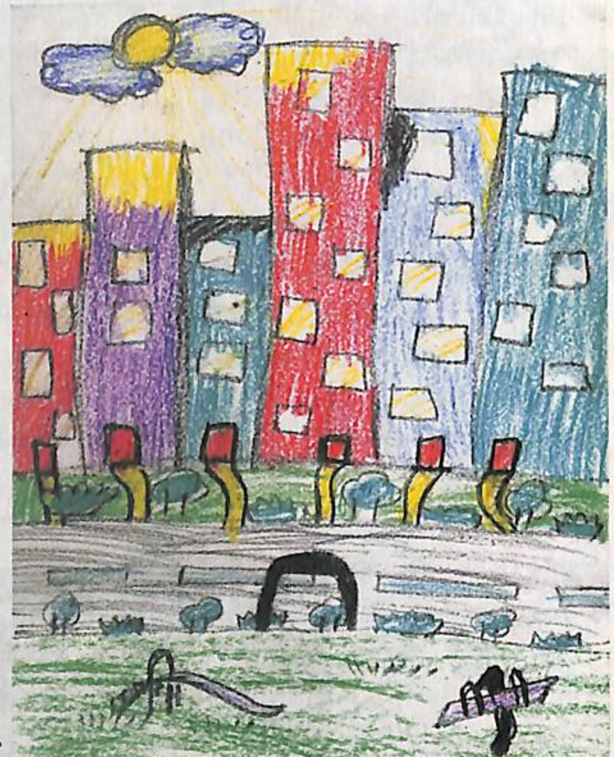


आलोक, तीसरी, फैज़ाबाद, उ.प्र.

बहुत पुरानी बात हैं। एक जंगल में गुफा में दो कुत्ते रहते थे। एक का नाम था मोती और दूसरे का टॉमी। मोती तो बड़ा होशियार और निडर था, परन्तु टॉमी मूर्ख और डरपोक था। मोती अकेला ही शिकार करता था, और स्वयं को तथा टॉमी को पालता था।

एक दिन मोती सुबह से शिकार पर गया था। टॉमी गुफा में अकेला था। इसी बात का फायदा उठाकर दो भेड़िए उस गुफा में आ गए। तभी टॉमी ने देखा तो वह डरने लगा और गुफा में पीछे-पीछे खिसकते रहा। भेड़िए उसके करीब आते गए। तभी मोती आ जाता है और भेड़ियों से लड़ने लगता है। भेड़िए अपनी हार मानकर भाग गए और मोती जीत गया। पर वह बुरी तरह घायल हो गया था। टॉमी ने उसके जख्मों पर कुछ पत्ते लगा दिए। कुछ दिन बाद वह ठीक हो गया। फिर दोनों साथ शिकार पर जाते थे।

सुप्रिया



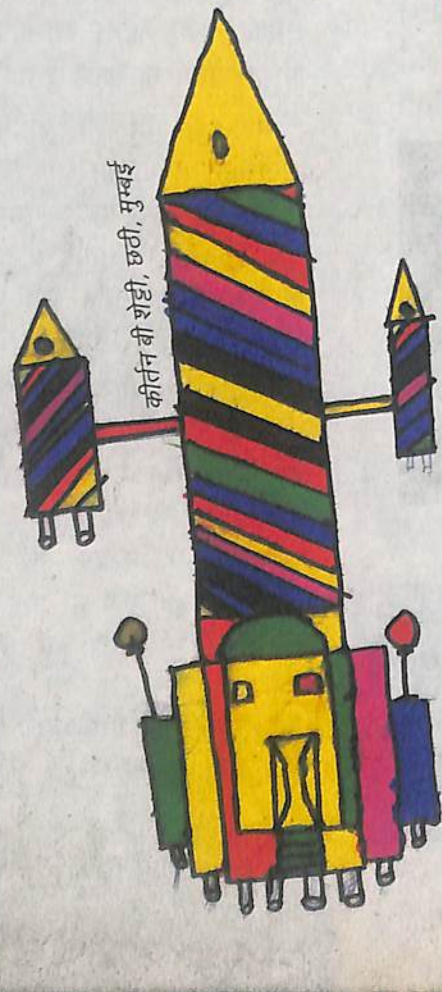
दीपांशु, पाँचवीं, भोपाल, म.प्र.

डरपोक रौनक

मेरी क्लास में एक शरारती लड़का है। उसका नाम है रौनक। नाश्ते की छुट्टी में वह हर लड़के को मारता रहता है।

एक दिन रोहन और हम खेल की क्लास में गए। जब खेल की क्लास खतम हो गई तो हम और रोहन ने उसे खूब मारा। फिर जब नाश्ते की छुट्टी हुई तो हम और रोहन ने उसे छोड़ दिया। पर दूसरे दिन स्कूल जाने से हम लोग डर रहे थे कि रौनक हम और रोहन को मार देगा। हम और रोहन डरते-डरते स्कूल गए। पर रौनक हम और रोहन से डर गया था।

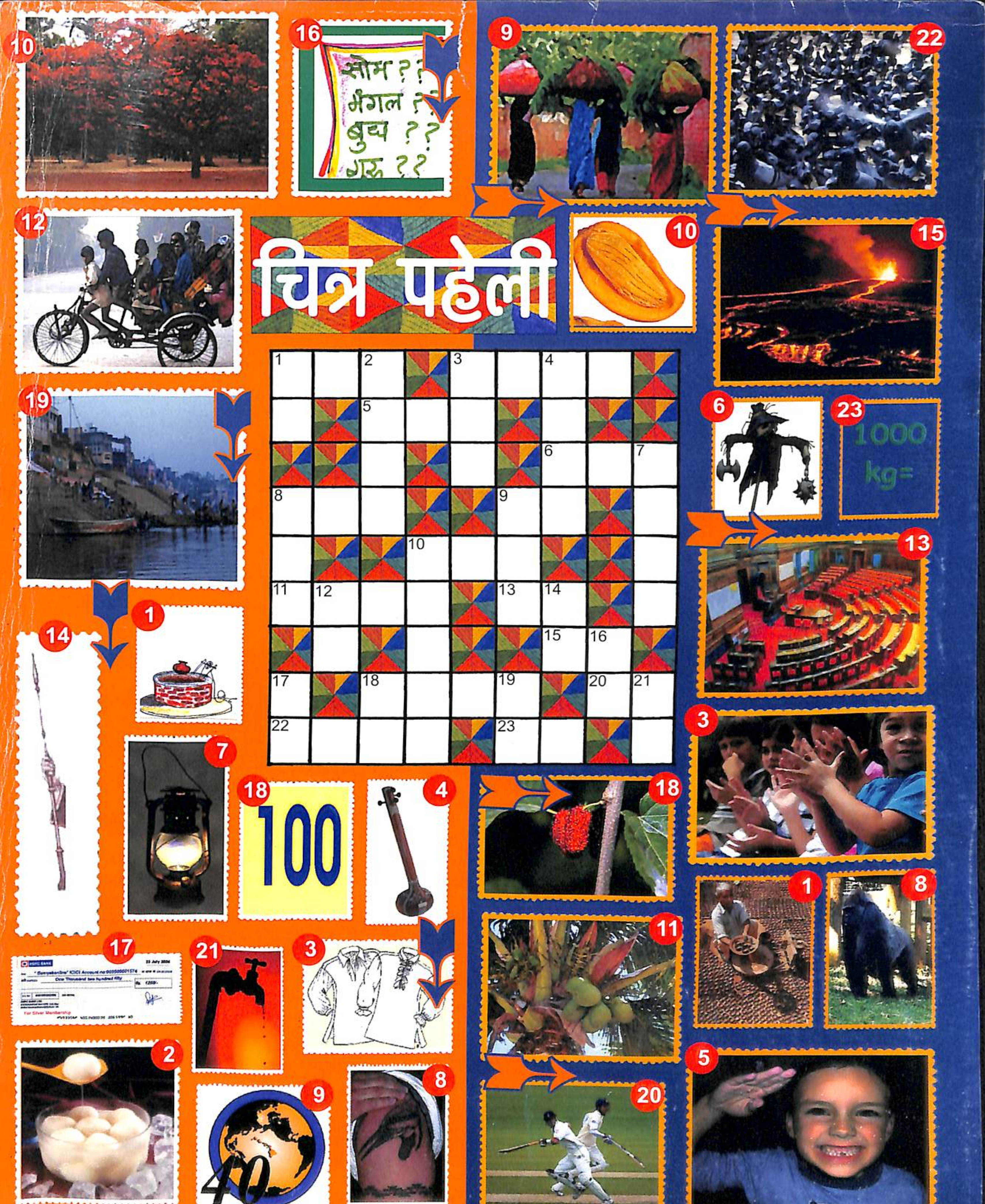
अवनीन्द्र कुमार राय, कोलकाता



कीर्तन बी शेट्टी, छठी, मुम्बई

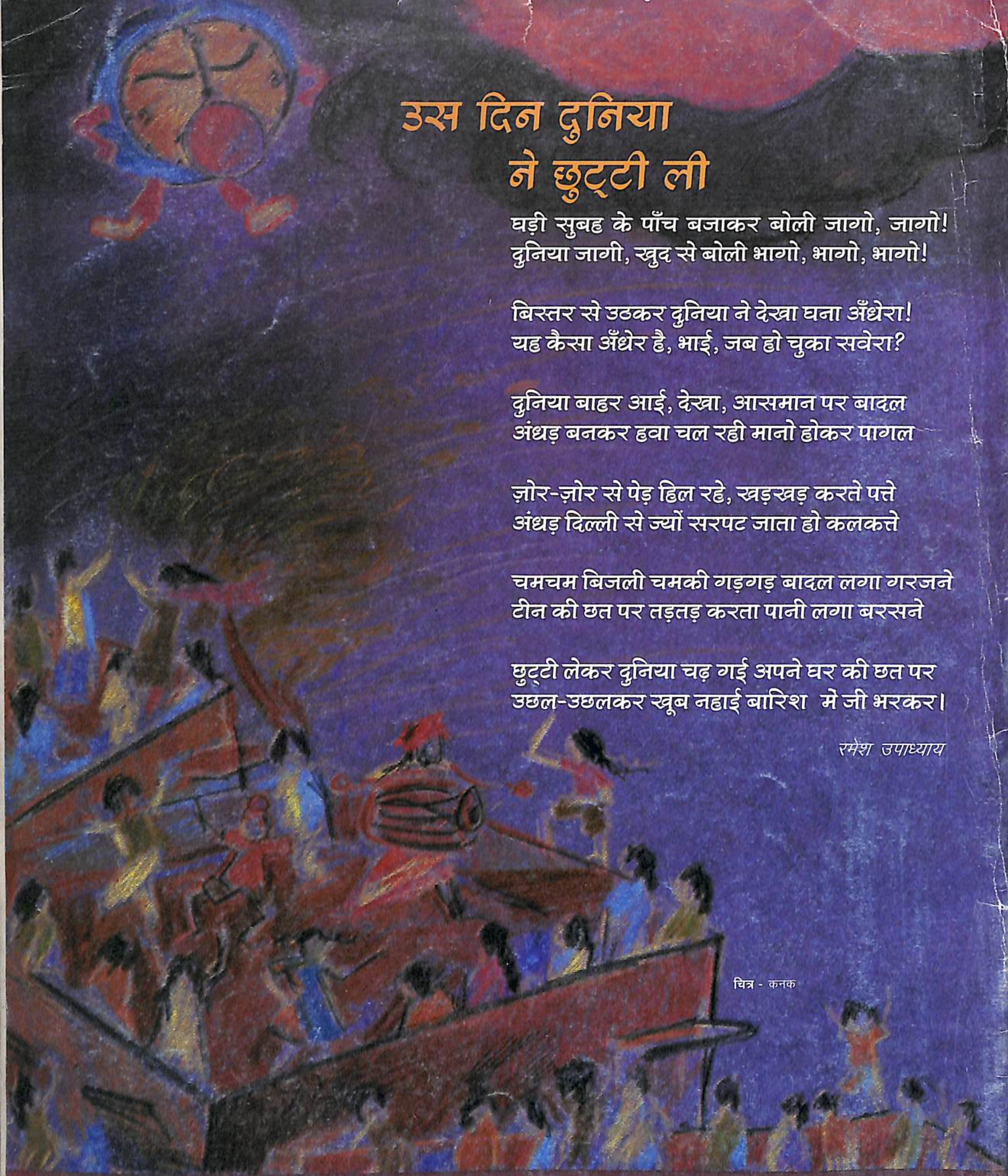
एक शेर था और एक लोमड़ी थी। उनको भोजन नहीं मिल रहा था। उन दोनों ने एक खरगोश को आते देखा तभी लोमड़ी बोली शेर साहब मरने का नाटक करो। तभी शेर नाटक करने लगा। लोमड़ी रोने का नाटक करने लगी। खरगोश से बोली शेर साहब को धकवा दो। शेर साहब मर गए। खरगोश बोला मरा हुआ शेर तो पूँछ हिलाता है। खरगोश की बात सुन शेर पूँछ हिलाने लगा तो खरगोश भाग गया।

हीरालाल, पाँचवीं, उज्जैन, म.प्र.



चित्र - कनक

पंजीयन क्र. 50309/85 के अन्तर्गत भारत सरकार के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत। डाक पंजीयन क्र. म.प्र./261/ भोपाल/2006-08



उस दिन दुनिया ने छुट्टी ली

घड़ी सुबह के पाँच बजाकर बोली जागो, जागो!
दुनिया जागी, खुद से बोली भागो, भागो, भागो!

बिस्तर से उठकर दुनिया ने देखा घना अँधेरा!
यह कैसा अँधेर है, भाई, जब हो चुका सवेरा?

दुनिया बाहर आई, देखा, आसमान पर बादल
अंधड़ बनकर हवा चल रही मानो होकर पागल

ज़ोर-ज़ोर से पेड़ हिल रहे, खड़खड़ करते पत्ते
अंधड़ दिल्ली से ज्यों सरपट जाता हो कलकत्ते

चमचम बिजली चमकी गड़गड़ बादल लगा गरजने
टीन की छत पर तड़तड़ करता पानी लगा बरसने

छुट्टी लेकर दुनिया चढ़ गई अपने घर की छत पर
उछल-उछलकर खूब नहाई बारिश में जी भरकर।

रमेश उपाध्याय

चित्र - कनक

रैक्स डी रोज़ारियो की ओर से सी. एन. सुब्रह्मण्यम द्वारा प्रकाशित तथा सी. एन. सुब्रह्मण्यम द्वारा मुद्रित तथा आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. में मुद्रित एवं प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) में प्रकाशित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल, एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र.